नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 1 अंक 5
मई 1999 • दो रुपये • आठ पृष्ठ

मई दिवस के शोलों को दहकाओ! उनको बारूद की ढेरी तक पहुंचाओ!!

सम्पादकीय

पिछली सदी में अमेरिका और यूरोप के मजदूर वर्ग ने जब काम के घण्टों को कम करने की तथा आराम और मनोरंजन के लिए समय की मांग उठाकर संघर्ष की शुरुआत की थी, तो यह इस बात का द्योतक था कि सर्वहारा वर्ग पूंजीवादी समाज की अमानवीयता के विरुद्ध एक नई चेतना से लैस हो चुका था और महज वेतन-भत्ते की मांग से या किसी भी तरह जीते हुए पूंजीपतियों की तिजोरी भरते रहने से आगे बढ़कर वह सामान्य इंसान की जिन्दगी की शर्तों की मांग कर रहा है। **शिकागो** के मजदूरों के बहादुराना संघर्ष और शहादत ने **मई दिवस** को जन्म दिया, जो सर्वहारा वर्ग की इस राजनीतिक मांग का प्रतीक -चिन्ह बन गया।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक '**पवित्र परिवार**' में **मार्क्स** और **एंगेल्स** ने लिखा था, *"चूंकि पूर्ण रूप से गठित सर्वहारा वर्ग में सभी मानवीय चीजों से, मानवीय चीजों के* ***आभास*** *तक से अलगाव लगभग पूरा हो चुका है; चूंकि सर्वहारा वर्ग के जीवन की अवस्थाओं में आज के समाज के जीवन की तमाम अवस्थाओं का सर्वाधिक अमानवीय रूप में समाहार है; चूंकि सर्वहारा में मनुष्य अपने को खो बैठा है, परन्तु साथ ही उसने इस खोने की सैद्धान्तिक चेतना हासिल ही नहीं की है, अपितु वह तात्कालिक, अब दूर न की जा सकने वाली, अब छुपायी न जा सकने वाली, सर्वथा अपरिहार्य* ***आवश्यकता****–अनिवार्यता की व्यावहारिक अभिव्यक्ति--के जरिए इस अमानवीयता के विरुद्ध सीधे विद्रोह करने के लिए विवश है, तो इससे यह अर्थ निकलता है कि सर्वहारा अपने को स्वतंत्र कर सकता है तथा उसे ऐसा करना होगा।"*

आठ घण्टे के कार्यदिवस का संघर्ष इस बात का द्योतक था कि सर्वहारा वर्ग पूंजीवादी अमानवीयता के विरुद्ध संगठित होकर संघर्ष करने की वर्ग-सचेतनता से लैस हो चुका था। यह वह पहला कदम था जो सर्वहारा वर्ग ने पूंजीवाद के नाश के अपने ऐतिहासिक मिशन को समझने और पूरा करने की दिशा में आगे बढ़ने के क्रम में उठाया था। यह सर्वहारा वर्ग के राजनीतिक संघर्ष की मांग थी, जो उसे महज आर्थिक मांगों के संकुचित दायरे से ऊपर उठाती थी। ध्यान रहे कि अमेरिका और यूरोप में (तथा उसके बाद एशिया-लातिन अमेरिका के उपनिवेशों में भी) सर्वहारा वर्ग ने आठ घण्टों के काम के दिन की मांग के साथ ही संगठन बनाने की राजनीतिक मांग भी उठाई थी और इसमें कामयाबी भी हासिल की थी।

रूस में 1900 में जब पहली बार खारकोव के मजदूरों ने मई दिवस के अवसर पर हड़तालों, प्रदर्शनों और सभाओं के जरिए "काम के घण्टे आठ करो" की मांग उठाई थी तो इसका महत्व बताते हुए लेनिन ने जोर दिया था कि इस मांग को दूसरी

(पेज 6 पर जारी)

मई–दिवस की ललकार

आज घोषणा करने का दिन
"हम भी हैं इंसान"
हमें चाहिए बेहतर दुनिया
करते हैं ऐलान
घृणित दासता किसी रूप में
हमें नहीं स्वीकार
मुक्ति हमारा अमिट स्वप्न है
मुक्ति हमारा गान।

पूंजीवादी व्यवस्था के संकट का परिणाम–अरबों-खरबों के खर्च से एक और मध्यावधि चुनाव

लेकिन पूंजीवादी संकट की कीमत जनता क्यों चुकाये?

13 महीने तक जैसे-तैसे टिके रहने के बाद भाजपा-गिरोह की सरकार लुढ़क चुकी है और अब 13वीं लोकसभा के लिए मध्यावधि चुनाव की घोषणा हो चुकी है। चुनाव -पूर्व सर्वेक्षण बताते हैं कि आगामी चुनावों के बाद भी त्रिशंकु संसद ही बनने की सम्भावना अधिक है।

किसी भी एक पूंजीवादी दल या उनके किसी भी गठबंधन के पांच साल तक सरकार न चला पाने का कारण वास्तव में पूंजीवादी अर्थतंत्र और पूंजीवादी संसदीय राजनीतिक तंत्र का गहराता असमाधेय संकट है। यह सिलसिला तो दरअसल चन्द्रशेखर की चन्द महीनों चलने वाली अल्पमत सरकार के समय से ही जारी है। नरसिंह राव की अल्पमत सरकार करोड़ों की लागत से सांसदों की खरीद करके पांच साल घिसटने में सफल रही। पर संयुक्त मोर्चे और भाजपा गठबंधन की सरकारें हर चन्द कोशिशों के बावजूद पांच साल काट पाने में कामयाब नहीं हो सकीं।

जोड़-तोड़, तीन-तिकड़म, खरीद-फरोख्त और संसदीय कुत्ताघसीटी की इस प्रक्रिया में पूंजीवादी संसद और पूरी पूंजीवादी व्यवस्था की असलियत एकदम नंगी हो गई है। यह स्पष्ट हो गया है कि नकली वामपंथी संसदीय भांड़ों सहित सभी पूंजीवादी पार्टियों की बुनियादी आर्थिक नीतियों पर तो पूरीतरह सहमति है, पर यदि कोई झगड़ा है तो सिर्फ इस बात का है कि कौन पूंजीपतियों और साम्राज्यवादी हितों का सबसे अधिक वफादार सेवक है।

नरसिंह राव की सरकार ने नई आर्थिक नीतियां लागू करके आम मेहनतकश जनता पर बेरोजगारी, मंहगाई, छंटनी-तालाबंदी, असुरक्षित रोजगार, खेती की तबाही आदि के जरिए जो कहर बरपा करना शुरू किया उसी सिलसिले को संयुक्त मोर्चे और भाजपा की सरकार ने आगे बढ़ाया। पेटेण्ट और बीमा के कानून संयुक्त मोर्चा सरकार के समय में पास होने वाले थे। पर वह सरकार गिर गई तो पेटेण्ट कानून भाजपा सरकार ने पास किया। बीमा क्षेत्र को निजी पूंजीपतियों और विदेशी कम्पनियों को सौंपने का कानून पास कराने का समय भाजपा की वर्तमान सरकार को नहीं मिल पाया तो अगली लोकसभा के गठन के बाद अगली सरकार इसे पास करायेगी, चाहे वह जिस किसी भी पार्टी या गठबंधन की हो। श्रम कानूनों में बदलाव लाकर मजदूरों के रहे-सहे जनवादी अधिकारों पर कुल्हाड़ा गिराने की भूमिका नरसिंह राव के शासन काल से ही बन रही थी। भाजपा सरकार इसकी पूरी तैयारी कर चुकी है। इसे भी अगली लोकसभा में कानून बना दिया जायेगा, सरकार चाहे जिसकी भी बने।

यह बात एकदम साफ है कि भारत जैसे देशों में पूंजीवादी दायरे के भीतर अब एक ही विकल्प बचा है और जो भी पार्टी सत्ता में रहे, थोड़ी-बहुत हेर-फेर के साथ वह इन्हीं नीतियों को लागू करेगी। कांग्रेसी शासन द्वारा शुरू उदारीकरण-निजीकरण की नीतियां ही वामपंथियों और धर्मनिरपेक्षता व समाजवाद का नारा जपने वाली "तीसरी ताकतों" ने भी सत्ता में आकर लागू किया और "स्वदेशी" की सुमिरनी फेरते हुए भाजपाई फासिस्टों ने तो हद दर्जे की बेशर्मी और दुरंगेपन के साथ इस काम को अंजाम दिया। हां, जब जो पार्टी विपक्ष में रही, तब वह देशभक्त का लबादा ओढ़कर संसद में विरोध की नौटंकी जरूर करती रही।

संसदीय उठापटक के इस खेल में सबसे ज्यादा बेनकाब तो चुनावी वामपंथी हुए हैं। मजे की बात यह है कि पूंजीपति भी आज इन्हें "जिम्मेदार संसदीय व्यवहार" के लिए सराह रहे हैं, और इन्हें व्यवस्था के संकटमोचक के रूप में देख रहे हैं। ज्योति बसु को प्रधानमंत्री पद का आदर्श

(पेज 3 पर जारी)

बीमा विधेयक अगली लोकसभा गठन तक टला यह भ्रम आत्मघाती होगा कि खतरा टल गया है

ललित सती

लोकसभा भंग होने के कारण बीमा नियामक विधेयक (आई. आर. ए. बिल) संसद में पास नहीं हो सका। इस कारण पांच महीने तक, अक्टूबर में नयी सरकार बनने तक, देशी-विदेशी मुनाफाखोरों को अफसोस के साथ इन्तजार करना पड़ेगा। इन इन्तजार के दिनों में न वे चैन से बैठेंगे और न ही बीमा के साथियों को ही सांस लेने या कुछ सुस्ता लेने के बारे में सोचना चाहिए।

वाजपेयी सरकार की कैबिनेट ने अपनी विदाई के पहले बीमा विधेयक पर गठित संसद की संयुक्त प्रवर समिति की सिफारिशों को मान लिया था। देश भर के बीमा कर्मियों के संघर्षों के दबाव में समिति ने मूल आई. आर. ए. बिल में कुछ छोटी मोटी रियायतें देने की सिफारिश की है। जैसे-विदेशी पूंजीनिवेश की सीमा को 40 प्रतिशत से घटाकर फिलहाल 26 प्रतिशत तक रखने की सिफारिश की है और विदेशी कम्पनियों के ऊपर यह प्रतिबन्ध लगाने की सिफारिश की है कि वे अपने व्यवसाय का एक निश्चित हिस्सा ग्रामीण एवं सामाजिक क्षेत्रों में अनिवार्य रूप से करें। ऐसा न करने पर जुर्माना लगाने की सिफारिश भी समिति ने की है।

संसदीय प्रवर समिति ने ये छोटी-मोटी रियायतें देकर यह उम्मीद पाली थी कि संसद में बैठे वामपंथी हवाबाज ज्यादा हो-हल्ला नहीं मचायेंगे। यही सोचकर कैबिनेट ने भी इसे तुरत-फुरत मंजूरी दे दी थी। वैसे, उनके हल्ला मचाने से भी कुछ फर्क नहीं पड़ने वाला था, क्योंकि पेटेण्ट बिल की तरह इसे भी कांग्रेस के सहयोग से पास करने में वाजपेयी सरकार सफल हो जाती। लेकिन इसी बीच शुरू हुई सत्ता की कुत्ताघसीटी में मामला लटक गया।

लेकिन, यह कहानी यहीं खत्म न हो जायेगी। जब पूंजीवादी अर्थव्यवस्था संकट में होती है तब पूंजीवादी राजनीति भी संकट के भंवर में फंस जाती है। यह कोई नयी बात नहीं है। इससे पैदा होने वाली राजनीतिक अस्थिरता में कभी-कभी इस तरह का आगा-पीछा होता रहता है। जबकि बीमा विधेयक संकटों में फंसी देशी-विदेशी पूंजी के लिए हीरामन तोता बना हुआ है और फलत: उसकी जान बीमा क्षेत्र में बसी हुई है, इसलिए बीमा-विधेयक को पास करवाने के लिए उसके प्रतिनिधि एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देंगे। ऐसी चर्चा भी शासन वर्गों के बीच गरम है कि सबकी रजामन्दी से ऐसी कोई व्यवस्था बनायी जाये, जिससे राजनीतिक उठापटक के बीच भी नीतिगत फैसले न लटकने पायें। चुनाव के बाद सरकार जो भी बने, पूरा शासक वर्ग इस बात पर भिड़ा हुआ है कि किसी भी तरह से बीमा विधेयक को पास करना उस सरकार

(पेज 3 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

'बिगुल' क्रान्तिकारी विचारों को समृद्ध कर रहा है!

लाल सलाम! 'बिगुल' हमें नियमित मिल रहा है। इसके पृष्ठों पर लगातार महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक रचनाएं देने के लिए धन्यवाद। हमारे क्रान्तिकारी विचारों को समृद्ध करने में यह लगातार अधिक से अधिक उपयोगी सिद्ध हो रहा है। भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन पर बहस शुरू करके आपने जो सकारात्मक पहल ली है, उससे हमें काफी प्रसन्नता हुई है।

भालचन्द्र, रामकृष्णनगर,
ब्रह्मपुर (उड़ीसा)।

भारत में क्रान्तिकारी सर्वहारा आन्दोलनः नई शुरुआत के लिए बहस जरूरी है!

'बिगुल' के फरवरी'99 अंक में प्रकाशित साथी हरणे के पत्र से भारत में क्रान्तिकारी वामपंथी आन्दोलन की समस्या पर एक उपयोगी बहस की शुरुआत हुई है।

यह सच्चाई आज भी अकाट्य है कि सर्वहारा क्रान्ति को सफलतापूर्वक अंजाम देने के लिए वर्ग-सचेत सर्वहाराओं का संगठित नेतृत्व जरूरी है। अगर हम मार्क्सवादी हैं तो हमें एक एकीकृत क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी के निर्माण और गठन की अनिवार्यता स्वीकार करनी ही होगी। आज के हालात मार्क्सवाद और उसके मार्गदर्शन में होने वाली क्रान्ति की आवश्यकता को पहले से भी अधिक सिद्ध कर रहे हैं। 1956 तक सोवियत संघ में और 1976 तक चीन में कायम सर्वहारा राज्य ने सिद्ध कर दिया है कि पूंजीवाद की तमाम विपत्तियों का समाधान आगे भी समाजवाद के द्वारा ही सम्भव है। इन क्रान्तियों की पराजय मार्क्सवाद की विफलता नहीं है। यह बीच का एक दौर है, जो स्थायी नहीं है।

भारतीय क्रान्ति की एक अहम समस्या नकली वामपंथी पार्टियां हैं, जो सिर्फ चुनावी कसरत करती हैं और ट्रेड यूनियनों पर काबिज होकर मजदूरों को भरमाये हुए हैं। ये पार्टियां मजदूरों को क्रान्ति की शिक्षा देने के बजाय उससे लगातार दूर रखती हैं और तनख्वाहों-बोनस-भत्ते आदि की मांग से आगे बढ़ने ही नहीं देंती। आज तो हालत यह है कि ऐसे चुनावी वामपंथी आर्थिक लड़ाई भी लड़ने की ताकत खो चुके हैं और सिर्फ दलाली-कमीशनखोरी ही कर रहे हैं। इनके नेता और कार्यकर्ता व्यवहार में मार्क्सवाद से दूर हैं। कहने के लिए ये मार्क्सवादी हैं, महज लालझण्डेदारी करते हैं, भाषण देते हैं, जुलूस निकालते हैं, पर जनता को चूतिया समझते हैं। पहले थोड़ी-बहुत जनता इनके दफ्तरों में जाती थी, अब तो झांकती भी नहीं। ये चुनावी पहलवान लाल पगड़ी बांध कर, निहायत मक्कारी, हरामजदगी और शातिरपने के साथ लेनिन के एक वाक्य का इस्तेमाल करते हैं कि संसद का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। वास्तविकता यह है कि संसद ही इनकी आखिरी मंजिल है। वर्ना 47 वर्षों से संसद का लगातार इस्तेमाल करके इन्होंने क्रान्ति को कितना आगे बढ़ा दिया है? लाल झण्डा ढो-ढोकर थक चुके इन वामपंथियों को संसद और विधानसभाएं मांद के समान दिखाई देती हैं और ये सारी ऊर्जा इसीलिए खर्च कर रहे हैं कि उस मांद में जाकर आराम कर सकें।

आज कम्युनिज्म के खिलाफ पूंजीवादी खेमा जो प्रचार करता है, उसके लिए इन नकली वामपंथियों का आचरण कम जिम्मेदार नहीं है। इनकी जिन्दगी का मार्क्सवाद से कुछ लेना-देना नहीं है। इनका व्यवहार सिद्धान्त से दूर है, एकदम बुर्जुआ है। आज की पूंजीवादी संसदीय राजनीति में भी इनकी स्थिति ताश के खेल के जोकर जैसी हो गई है। कांग्रेस ने देश में जिन आर्थिक नीतियों की शुरुआत की और सभी पूंजीवादी पार्टियों ने जिनको स्वीकार किया, उन नीतियों के लिए चुनावी वामपंथी भी कम जिम्मेदार नहीं है। उदारीकरण की नीतियों पर अमल के आठ वर्षों के दौरान ये सिर्फ रस्मी विरोध का जुबानी जमाखर्च ही करते रहे और संसद से सड़क तक उट्ठक-बैठक ही करते रह गये। भाजपा और संघ परिवार के फासीवादी उभार के लिए भी ये कम जिम्मेवार नहीं हैं। फासीवाद का मुकाबला केवल संगठित मजदूर वर्ग कर सकता है और इन अवसरवादियों ने मजदूर आन्दोलन को भीतर से खोखला कर डाला।

सच्चा मार्क्सवादी वही हो सकता है जो मेहनतकश वर्गों के भीतर पूंजीवादी व्यवस्था का चौतरफा भण्डाफोड़ करे और उनके बीच क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करते हुए उन्हें संगठित करे। सच्चा मार्क्सवादी वही हो सकता है जो जनता को आर्थिक संघर्ष के साथ ही उस राजनीतिक लड़ाई के मैदान में उतारे जिसका अंतिम लक्ष्य क्रान्तिकारी सत्ता-परिवर्तन हो।

भारत के क्रान्तिकारी वामपंथी संगठनों को पूंजीवादी सरकार, पूंजीवादी पार्टियों और पूरी पूंजीवादी व्यवस्था के साथ ही चुनावी वामपंथी अवसरवादियों का भी भण्डाफोड़ करना होगा। उन्हें सर्वहारा वर्ग में काम करने के साथ ही जनता के सभी वर्गों में प्रचार, आन्दोलन और संगठन क: काम करना होगा और क्रान्तिकारी कतारों में भरती करनी होगी।

इसमें सन्देह नहीं कि क्रान्तिकारी वामपंथी संगठनों ने न सिर्फ भारतीय क्रान्ति के स्वरूप और कार्यक्रम को सही ढंग से नहीं समझा है, बल्कि सही लेनिनवादी जन-दिशा को लागू करने में भी उनकी असफलता गम्भीर रही है। यही वजह है कि क्रान्तिकारी खेमे से भी कुछ चुनावबाज और बात बहादुर निठल्ले ग्रुप पैदा हो रहे हैं। दूसरी ओर अराजकतावादी भटकाव वहां तक जा पहुंचा है कि आपस में भी मतभेद बंदूकों से हल किये जा रहे हैं। फूट और बिखराव के तीन दशक गुजर चुके हैं।

जरूरत है कि एक बार फिर मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन-स्तालिन-माओ की कृतियों का अध्ययन किया जाये, उनकी रोशनी में आज की दुनिया और अपने देश की बदली हुई परिस्थितियों की समझ बनाई जाये और आपस में संवाद किया जाये। सिर्फ अपने को ही सही मानने और भारतीय क्रान्ति का केन्द्र मानने, गाली-गलौज करने या लेबल लगाने से क्रान्ति का हित नहीं सधेगा। यह तंगदिमागी है।

साथ ही, यह भी जरूरी है कि संगठन का ढांचा क्रान्तिकारी ढंग से खड़ा किया जाये और जनवादी केन्द्रीयता को लागू किया जाये। पार्टी, कार्यकर्ता, जनता और समाज-व्यवस्था के बीच के सम्बन्ध मेरे विचार से कुछ इस प्रकार होते हैं:

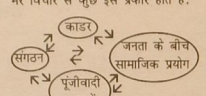

इस बात को अच्छीतरह समझना और लागू करना होगा। नेतृत्व की नौकरशाही और गैर-क्रान्तिकारी कार्यशैली-जीवनशैली के भटकावों से भी नुकसान हो रहा है और बाधाएं पैदा हो रही हैं।

मेरी अपनी समझ है कि आंख मूंदकर चीन की जनवादी क्रान्ति की कार्बन-कापी करने की स्थितियां आज नहीं हैं। पूंजीवादी उद्योग, वित्तीय तंत्र के फैलाव और भूमि-संबंधों में आये बदलाव ने भारतीय क्रान्ति की मंजिल को बदल डाला है। इसपर, रेशा-रेशा खोलकर लम्बी बहस होनी चाहिए।

मेरी सोच यह भी है कि क्रान्तिकारी वामंपथी संगठनों में जनवादी केन्द्रीयता के उसूल सही ढंग से लागू नहीं होते, इससे जन-कार्रवाइयां सही ढंग से नहीं हो पातीं, कार्यकर्ताओं की तैयारी नहीं हो पाती, पार्टी-संगठन और जन-संगठन के बीच के सम्बन्ध सही रूप में नहीं चल पाते, क्रान्तिकारी भरती का काम सुचारु रूप से नहीं हो पाता, संगठन के भीतर और बाहर सही ढंग से लाइनों का संघर्ष नहीं चल पाता तथा इन सबके कारण गतिरोध टूट नहीं पाता।

इन प्रश्नों पर सोचते हुए भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के पूरे इतिहास को भी पीछे मुड़कर देखना होगा।

क्रान्तिकारी अपनी खोल में नहीं दुबकते। वे कभी बहस से भागते नहीं। अतः सभी क्रान्तिकारी वामपंथी संगठनों से मेरा आग्रह है कि वे 'बिगुल' के तत्वावधान में, साथी हरणे की पहल पर शुरू हुई इस बहस में भाग लेकर अपना पूरा 'स्टैण्ड' रखें ताकि मुझ जैसा सामान्य मजदूर कार्यकर्ता भी तय कर सके कि सही क्या है और गलत क्या है।

-रघुवंश मणि
खुर्जा, बुलन्दशहर (उ.प्र.)

एक कविता

हम मेहनतकश दुनिया की हर चीज का निर्माण करते हैं,
हम मानवता को बेहद प्यार भी करते हैं,
हम दुनिया में श्रम की लूट व अन्याय से नफरत भी करते हैं,
हम नदियों की दिशा को रोककर, उन्हें मोड़ना भी जानते हैं
हम लोहे को पिघलाकर, उसे मोड़ना भी जानते हैं
इसलिए हम निहत्थे व निर्दोष मजलूमों पर,
उठने वाले हाथों को तोड़ भी सकते हैं।

-सुधाकर

अक्टूबर क्रान्ति की 81 वीं वर्षगांठ के अवसर पर
राहुल फाउण्डेशन की नई प्रस्तुति

अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन

सोवियत समाजवादी क्रान्ति की तैयारी से लेकर बाद के दौर तक वहां उपस्थित रहकर युगान्तरकारी घटनाओं के साक्षी रहे अमेरिकी पत्रकार एल्बर्ट रीस विलियम्स की दो दुर्लभ कृतियाँ-
'रूसी क्रान्ति के दौरान' तथा 'लेनिनः व्यक्तित्व और कार्य'
एक ही जिल्द में हिन्दी पाठकों के लिए विशेष रुप से
साथ ही रीस विलियम्स का परिचय

मूल्य- रु. 75/- (पेपर बैक), रु. 150/- (सजिल्द)

बिगुल पोस्टर श्रृंखला के तहत प्राप्त करें दो आकर्षक पोस्टर

कम्युनिस्ट घोषणा पत्र की 150वीं वर्षगांठ के अवसर पर और
महान पेरिस कम्यून की 128वीं जयन्ती 18 मार्च के अवसर पर

बिगुल पोस्टर-एक और बिगुल पोस्टर-दो

प्राप्ति स्थानः जनचेतना, 3/274, विश्वासखण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

- शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा0 दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ
- जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर
- विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर
- विश्वनाथ मिश्र, चेतना कार्यालय, बड़हलगंज, गोरखपुर-273402
- ओमप्रकाश, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ
- जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 7)
- सत्यम वर्मा, यूनीवार्ता, काज़मी चैम्बर्स, 5 पार्क रोड, लखनऊ
- राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ
- अरविन्द सिंह, 123, बिड़ला छात्रावास, बी0एच0यू0 वाराणसी
- डा. डी0के0. सचान, (शस्य वैज्ञानिक), A-308 आवास विकास (गंगापुर)
- प्रो. प्यारे लाल, 139, फूलबाग कालोनी, पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय, पन्तनगर-263145
- राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र
- अमृतलाल पाण्डेय, निकट प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द, बसखारी, जि0 - अम्बेडकरनगर
- एतकाद अहमद, डिपार्टमेंट ऑफ फाउण्डेशन आफ एजुकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली
- संतोष शर्मा, Q-No -L/61K, बरौनी रेलवे कालोनी, बरौनी, बेगूसराय
- अमरनाथ पाण्डेय, अधिवक्ता, अस्तबल भवन, अम्बिकापुर, सरगुजा-497001
- दीपशिखा पत्रिका मंडप, द्वारा श्री शिवदास पाण्डेय, पानी टंकी चौकी, क्लब रोड, मुजफ्फरपुर
- मैत्रयी साहित्य संगम, सर्वे आफिस के सामने, लालबाग के.डी.एस. दरभंगा-846004
- अविनाश कुमार सिन्हा/रणजीत कुमार श्रीवास्तव द्वारा शैलेन्द श्रीवास्तव, बरियारी चक, मैंहसी, पूर्वी चम्पारण
- जनार्दन थापा, लुकसान बाज़ार, पो. कैरन जि. जलपाई गुड़ी - 735205
- डा.हरियश राय, ए-205 सुजल अपार्टमेंट, सेटेलाइट रोड, रामदेव नगर अहमदाबाद-380054
- पुस्तक पत्र-पत्रिका बिक्री-वितरण केन्द्र डिल्ली बाजार, उकालो, काठमांडू (नेपाल)
- विशाल पुस्तक सदन, विजुआर बाजार प्यूठान, राप्ती अंचल, नेपाल
- विशाल पुस्तक सदन, अस्पताल लाइन बुटवल, नेपाल
- जलजला पुस्तक सदन, धामवोजी चौक नेपालगंज बांके, नेपाल

बहस में

कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन के बिखराव का मूल कारण सही विचारधारात्मक समझ का अभाव

नागपुर से साथी पी. आर. हरणे का जो पत्र 'बिगुल' के फरवरी'1999 अंक में छपा है उसने भारतीय क्रान्ति के लिये प्रयासरत एवं शुभेच्छा रखने वाले सभी ईमानदार कार्यकर्ताओं एवं शुभचिन्तकों-हमदर्दों की भावनाओं का इजहार किया है। पत्र में उठाये गये मुद्दों पर बहस से कतराना आज की जलती सच्चाई से आंख चुराना है। 'बिगुल' को यह बहस शुरू करने के लिए कोटिशः धन्यवाद!

'बिगुल' के साथियों ने बहस को सुचारु ढंग से चलाने के लिए साथी हरणे के पत्र के प्रमुख बिन्दुओं को रेखांकित कर उचित किया हैं इससे बहस बिखरने से बचेगी और सही दिशा की ओर बढ़ेगी। पत्र के सभी पांच बिन्दुओं पर अपनी राय रखने का लोभ समयाभाव के कारण संवरण कर रहा हूं। फिलहाल मैं पहले बिन्दु पर अपनी राय व्यक्त करने तक इस पत्र को सीमित रखूंगा। आगे समय निकालकर अन्य बिन्दुओं पर भी अपनी राय मैं अवश्य लिखूंगा।

साथी हरणे की इस राय से मैं पूर्णतः सहमत हूं कि आम जनता की बद से बदतर हालत के बावजूद किसी देशव्यापी प्रभावशाली क्रान्तिकारी आन्दोलन खड़ा न हो पाने का एक बड़ा कारण देश स्तर पर एक एकीकृत क्रान्तिकारी पार्टी का अभाव है। देश के अलग-अलग हिस्सों में सक्रिय हुए लगभग दो-तीन दर्जन कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुप बिखरे होने के कारण देश के राजनीतिक परिदृश्य में अपनी मौजूदगी का अहसास भी नहीं करा पाते। यह एक वस्तुगत सच्चाई है, जिसे कोई भी इनकार नहीं कर सकता।

मेरी समझ से इसका सर्वप्रमुख और सबसे बुनियादी कारण कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुपों के अन्दर सही विचारधारात्मक समझ का अभाव है। देश के कम्युनिस्ट आन्दोलन में सही विचारधारात्मक समझ की कमी का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना खुद आन्दोलन का। सवाल चाहे 1947 के पूर्व राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान अविभाजित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की ऐतिहासिक गलतियों का हो या बाद में संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष का हो या कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन की वर्तमान दुरवस्था का हो, समूचा कम्युनिस्ट आन्दोलन वामपंथी दुस्साहसवाद और दक्षिणपंथी अवसरवाद के दो छोरों के बीच झूलता रहा है। हमारा कम्युनिस्ट नेतृत्व सही विचारधारात्मक अवस्थितियों को अपनाने और ठोस परिस्थितियों को ठोस विश्लेषण कर सही सर्वहारा रणनीति और सर्वहारा रणकौशल अख्तियार करने में मुख्यतः अक्षम ही साबित हुआ है। इसका कुल नतीजा यह त्रासद सच है कि बेमिसाल कुर्बानियों, अनगिनत साथियों की शहादतों के बावजूद, देश के कम्युनिस्ट आन्दोलन के 66 वर्षों के बाद भी हम आज एक देशव्यापी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के अभाव पर चर्चा करने को मजबूर हैं।

न तो मार्क्सवाद के विचार में कोई त्रुटि है और न ही कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन की मौजूदा दुरवस्था का कारण इस विशाल देश की परिस्थितियों की जटिलता में निहित है। मार्क्सवाद एक जीवन्त और गत्यात्मक विज्ञान है। इसके संस्थापकों- मार्क्स एवं एंगेल्स ने अपनी विलक्षण मेधा और महाकाव्यात्मक श्रम-साधना और अनुशीलन के द्वारा पूरे मानव जाति के इतिहास के गहन अध्ययन और मानवता द्वारा अर्जित समस्त ज्ञान सम्पदा का निचोड़ निकालते हुए सर्वहारा वर्ग को समस्त मानवता को समस्त प्रकार के शोषण-उत्पीड़न से मुक्त करने वाली एक महान ऐतिहासिक शक्ति के रूप में दुनिया के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने सर्वहारा वर्ग को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के दार्शनिक हथियार से लैस किया। अपने समय में चल रहे वर्ग संघर्षों में प्रत्यक्ष शिरकत करते हुए, दुनियाभर में चल रहे जनसंघर्षों से सीखते हुए, जीवन के हर महत्वपूर्ण क्रिया व्यापार घटना-परिघटना का विश्लेषण करने में इस दार्शनिक उपकरण को अत्यन्त सृजनात्मकता के साथ लागू किया और उसे मृत्युपर्यन्त विकसित करते रहे। उन्होंने स्वयं खोजे गये इस दार्शनिक हथियार को कभी भी जड़सूत्र में बदलने की कोशिश नहीं की और ऐसा करने के प्रयासों के विरुद्ध निर्मम संघर्ष भी चलाया।

इसी प्रकार रूसी सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक और नेता लेनिन ने भी मार्क्सवाद की जीवन्तता और गत्यात्मकता की हिफाजत करते हुए उस आगे विकसित किया और घोषित किया कि मार्क्सवाद हमारे कर्मों का पथप्रदर्शक सिद्धान्त है कोई कठमुल्ला सूत्र नहीं। उनकी मृत्यु के बाद स्तालिन ने भी मार्क्सवाद के बुनियादी उसूलों पर कोई आंच नहीं आने दी। चीनी सर्वहारा वर्ग के शिक्षक और नेता माओ-त्से-तुङ ने भी मार्क्सवाद की जीवन्तता की न केवल हिफाजत की वरन् सोवियत संघ में पूंजीवादी पुनर्स्थापना और चीनी क्रान्ति के अनुभवों की रौशनी में मार्क्सवाद को नयी ऊंचाइयों तक पहुंचाया और सर्वहारा वर्ग के विचारधारात्मक शस्त्रागार में नये हथियार जोड़े।

विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास के इन अनुभवों और शिक्षाओं की रौशनी में जब हम भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास और वर्तमान स्थिति पर नजर डालते हैं तो परिदृश्य बेहद निराशाजनक नजर आता है। हमारे साथी बेमिसाल कुर्बानियां देते रहे और आज भी दे रहे हैं, लेकिन मार्क्सवाद का नाम लेते हुए भी उसकी जीवन्तता और गत्यात्मकता की, उसकी मूल आत्मा का ही वध होता रहा है। मार्क्सवाद का झण्डा उठाने के नाम पर कठमुल्ला सूत्रों का ही जाप ज्यादा होता रहा है और नतीजतन पेण्डुलम कभी इस छोर तो कभी उस छोर के बीच झूलता रहा है।

और आज तो स्थिति और भी दुर्भाग्यपूर्ण बन चुकी है। विचारधारात्मक कठमुल्लापन आज वहां पहुंच चुका है कि अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग अलापते हुए कम्युनिस्ट क्रान्किारी ग्रुप अपने राजनीतिक-विचारधारात्मक मतभेदों को सही कम्युनिस्ट ढंग से हल करने के बजाय आपस में ही थुक्का-फजीहत, गैरराजनीतिक आरोप-प्रत्यारोप में उलझे हुए हैं। हालत यह है कि कभी-कभी तो भौतिक रूप से भी संघर्षों में उलझ पड़ने की नौबत तक आ चुकी है।

यदि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुपों ने सही विचारधारात्मक समझ कायम की होती और कठमुल्लापन की जगह जीवित और गत्यात्मक मार्क्सवाद का झण्डा उठाया होता तो वे अपने मतभेदों को भी सुलझा लेते और देश की ठोस परिस्थितियों को समझने में भी सृजनात्मक रूप से अपने दार्शनिक उपकरण को लागू कर पाते और आज हम वहां नहीं खड़े होते, जहां खड़े हैं।

निश्चित रूप से विचारधारात्मक कमी के इस त्रासद इतिहास के कारण भी हमारे देश के इतिहास में ही निहित हैं, लेकिन आज उनकी चर्चा करना हमें आत्मनिरीक्षण-परीक्षण में कोई विशेष मदद नहीं करेगा।

बहस के इस बिन्दु पर मैंने संक्षेप में अपनी बात रखी हैं यदि बहस आगे बढ़ती है तो फिर अपनी बात के समर्थन में मैं इतिहास के उन ठोस तथ्यों का भी जिक्र करूंगा, जिसकी ओर मैंने सिर्फ इंगित किया है। साथ ही अन्य बिन्दुओं पर भी लिखूंगा। फिलहाल इतना ही।

-जी. पी. भट्ट
अंधियारी बाग, गोरखपुर

लेकिन पूंजीवादी संकट की कीमत जनता क्यों चुकाये?

(पेज 1 से जारी)

उम्मीदवार माना जा रहा था, हालांकि आपसी उठापटक में "कामरेड मोशाय" के सपने साकार नहीं हो सके। भाजपा और संघ-परिवार का फासिस्ट चरित्र स्वयं प्रमाणित है, पर धर्मनिरपेक्षता का नारा भाजपा-विरोधी बुर्जुआ पार्टियों के लिए महज चुनावी नारा है, यह पिछले दिनों विभिन्न मोर्चों के घटक दलों के अवसरवादी पैंतरापलटों से साफ हो गया है। भाकपा-माकपा फासिस्ट साम्प्रदायिक भाजपा के विरोध के लिए कांग्रेस को समर्थन देने को तैयार थीं, और अभी भी हैं, जिसकी आर्थिक नीतियों का वे लगातार विरोध करने के दावे किया करती थीं। जाहिर है कि हिन्दूवादी फासीवाद का चुनावी वामपंथी दल संसद के भीतर जोड़तोड़ करके ही विरोध करने का नाटक कर सकते हैं। व्यापक मेहनतकश आबादी की जुझारू लामबंदी ही फासीवाद का वास्तविक प्रतिकार का सकती है और संसदीय वामपंथी बातबहादुर यह करने की न नीयत रखते हैं, न कलेजा। एक बार फिर यह साबित हो रहा है **संसदीय वामपंथ वास्तव में पूंजीवादी व्यवस्था की ही दूसरी सुरक्षा पंक्ति का काम करती है।**

बहरहाल, भारतीय संसद में पूंजीवादी जनवाद का जो भोंड़ा प्रहसन जारी है, वह यही सिद्ध करता है कि वहां पक्ष-विपक्ष के बीच हवाई गोले चलते-चलते जो जूतमपैजार की स्थिति आ गई है वह पूंजीवादी जनवाद का संकट है। बुनियादी नीतियों में कोई फर्क न रखने वाली बुर्जुआ पार्टियां और नामधारी वामपंथी पार्टियां पूंजीपति वर्ग के प्रति अपनी वफादारी सिद्ध करने के लिए इसकदर लड़ रही हैं कि पूंजीपति वर्ग भी परेशान और चिन्तित हो उठा है।

विडम्बना तो यह है कि पूंजीवादी पार्टियों की आपसी लड़ाई से मध्यावधि चुनावों का सिलसिला जारी है, उसका भारी खर्च जनता को ही उठाना है। **बारहवीं लोकसभा के चुनाव में सरकारी खर्च के आंकड़े आठ अरब रुपये के आसपास थे। इसबार लगभग 12 अरब रुपये के सरकारी खर्च का अनुमान है। यह पूरा खर्च फिर जनता को ही तरह-तरह से टैक्स भरकर चुकाना होगा। चुनावों का गैर-सरकारी खर्च सरकारी खर्चों से दस गुने से भी ज्यादा होता है।** सभी पूंजीपति घराने सभी चुनावी पार्टियों को उनकी औकात के हिसाब से, और अपनी हितपूर्ति के हिसाब से, करोड़ों रुपये सफेद धन के रूप में देते हैं, जिसे वे अपने बैलेन्स शीट में दिखाते हैं। इससे कई गुनी अधिक रकम काले धन के रूप में दी जाती है। इसके अतिरिक्त सभी पार्टियों के उम्मीदवार छोटे-बड़े व्यापारियों, घूसखोर अधिकारियों, ठेकेदारों, सटोरियों और तरह-तरह के काले धंधों वालों से लेकर दूकानदारों तक से भारी वसूली करते हैं। बड़े पूंजीपति और विदेशी कम्पनियों से लेकर व्यापारियों तक-सभी अपने इस खर्च की भरपाई अपने-अपने ढंग से जनता से ही करते हैं। पूंजीपति घराने अपनी चुनावी मदद के एवज में सरकार से लेकर विपक्षी सांसदों तक से अपने छोटे-बड़े हित साधते हैं तथा विभिन्न निगमों, कमेटियों, संस्थाओं में पद हथियाते हैं। भारतीय उद्योगपतियों की संस्था सी. आई. आई. के अध्यक्ष राहुल बजाज ने अपने एक इण्टरव्यू में यह खुलेआम स्वीकार किया है। भारतीय पूंजीपतियों की संस्थाएं-फिक्की, सी.आई.आई. और एसोचैम पूंजीपतियों के साझा हितों को लेकर सभी पार्टियों से सीधे बातचीत और मोलतोल करी हैं। यही काम बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भी करती हैं और साम्राज्यवादी देशों के दूतावास भी चुनावी समीकरणों के बनने-बिगड़ने में अहम भूमिका निभाते हैं।

यह सारा खेल आज इतना खुला हो चुका है कि यह सच्चाई एकदम प्रमाणित होती दीख रही है कि **पूंजीवादी चुनावों का तथाकथित जनतांत्रिक खेल वास्तव में पूंजी का ही खेल होता है। पूंजीवादी व्यवस्था में सरकार चाहे जिसकी बने, वह पूंजीपतियों की 'मैनेजिंग कमेटी' का ही काम करती है। संसद वास्तव में बहसबाजी का अड्डा है, नीतियां बनाने का काम तो दरअसल पूंजीपतियों के संगठनों की बैठकों में होता है।**

चुनाव को लेकर अहम प्रश्न यह है कि पूंजीवादी व्यवस्था के अन्दरूनी संकट के चलते बार-बार होने वाली चुनावी नौटंकी का भारी खर्च जनता क्यों उठाये? पर आखिर उपाय क्या है? मौजूदा हालात में यदि पूंजीवादी व्यवस्था पूंजीवादी जनवाद के रूप में कायम है तो इसमें यही होना है। इसका दूसरा रूप नग्न फासीवाद हो सकता है और वह खतरा भी किसी न किसी रूप में मौजूद ही है। व्यवस्था का गहरा संकट भी मौजूद है और फासिस्ट धाराएं और प्रवृत्तियां भी मौजूद है।

हालात इस बात को एकदम साफ करते जा रहे हैं कि मजदूरों, गरीब और तबाह मध्यम किसानों तथा बेहाल शहरी मध्यवर्ग और अर्द्धसर्वहारा आबादी के सामने तो बस एक ही विकल्प है। उसे इसी ढांचे के भीतर बेहतर विकल्प की तलाश के भ्रम से मुक्त होना होगा। क्या पिछले पचास साल इस नतीजे पर पहुंचने के लिए काफी नहीं है कि पूंजीवादी जनतंत्र का एकमात्र विकल्प समाजवादी जनतंत्र ही हो सकता है जिसमें उत्पादन, राजकाज और समाज के ढांचे पर उत्पादन करने वाले वर्गों का प्रत्यक्ष नियंत्रण हो? पूंजीवादी जनवाद तो अपना भण्डाफोड़ खुद ही कर रहा है। हम इसके आगे सोचना कब शुरू करेंगे?

बीमा विधेयक अगली लोकसभा गठन तक टला यह भ्रम आत्मघाती होगा कि खतरा टल गया है

(पेज 1 से जारी)

की सबसे पहली प्राथमिकता हो।

और यही होने वाला भी है। चुनाव के बाद जो भी पार्टी या गठबन्धन सत्ता में आयेगा उसकी सबसे पहली प्राथमिकता यही होगी। कांग्रेस और भाजपा एवं उसके सहयोगी पहले ही इसके लिए तैयार बैठे हैं। रहा सवाल संसदीय वामपन्थियों का, तो यह अब साबित हो चुका है कि उनका विरोध भी गरज-मिटावन से अधिक नहीं है। इसीलिए, वे देशभर में बीमाकर्मियों को नये सिरे से एकजुट कर और अन्य मेहनतकश वर्गों को साथ लेकर संघर्षों के जरिये एक व्यापक जनदबाव बनाने के बजाय चुनावी गुणा-गणित की बिसात पर चालें चलने में व्यस्त हैं। होगा यह कि, वे भी नयी सरकार बनने के बाद लाज बचाने के लिए अधिक से अधिक संसद से बहिष्कार कर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेंगे।

ऐसी स्थिति में, अब सारा दारोमदार इस बात पर है कि क्या आम बीमा कर्मी और इससे भी ज्यादा वे बीमाकर्मी जो अपने नेतृत्व की इन विश्वासघाती चालों को समझ चुके हैं, अपने अस्तित्व की लड़ाई को नये सिरे से संगठित करने के लिए किस हद तक प्रयास करते हैं। सत्ताधारियों की कुत्ताघसीटी ने जो मोहलत दी है, उसमें नेतृत्व के फरमानों का बैठकर इन्तजार करने के बजाये इसका इस्तेमाल अपनी ताकत को नये सिरे से बटोरने के लिये होना चाहिए। तभी ऐसी स्थिति पैदा हो सकती है जब दुबारा संसद में बिल पास कराने की कोशिश होने पर एक कारगर विरोध हो सके।

यदि हम इस भ्रम में रहे कि सरकार गिरने से खतरा टल गया है और निश्चिन्त हो गये तो यह हमारे लिए आत्मघाती होगा।

मई दिवस का इतिहास

• अलेक्जैण्डर ट्रैक्टेनबर्ग

'मई दिवस का इतिहास' अलेक्जैण्डर ट्रैक्टेनबर्ग की सुप्रसिद्ध पुस्तिका है जो सबसे पहले 1929 में प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तिका के कई संस्करण प्रकाशित हुए और 1947 तक इसकी 5 लाख से भी अधिक प्रतियां बिक चुकी थीं। मई दिवस के विशेष अवसर पर हम बिगुल के पाठकों के लिए इस पुस्तिका के 1947 में इण्टरनेशनल पब्लिशर्स, न्यूयार्क द्वारा प्रकाशित संशोधित संस्करण के हिन्दी अनुवाद का दो किश्तों में प्रकाशन शुरू कर रहे हैं। इस प्रसिद्ध पुस्तिका का हिन्दी अनुवाद 'बिगुल' द्वारा पहली बार प्रकाशित किया जा रहा है।

— सम्पादक

मई दिवस का जन्म काम के घण्टे कम करने के आन्दोलन से अटूट रूप से जुड़ा हुआ है। काम के घण्टे कम करने के इस आन्दोलन का मजदूरों के लिए बहुत अधिक राजनीतिक महत्व है। जब अमेरिका में फैक्ट्री-व्यवस्था शुरू हुई, लगभग तभी यह संघर्ष उभरा।

हालांकि अमेरिका में अधिक तनख्वाहों की मांग, शुरुआती हड़तालों में सबसे ज्यादा प्रचलित मांग थी, लेकिन जब भी मजदूरों ने अपनी मांगों को सूत्रबद्ध किया, काम के घण्टे कम करने का प्रश्न और संगठित होने के अधिकार का प्रश्न केन्द्र में रहा। जैसे-जैसे शोषण बढ़ता गया, मजदूरों को अमानवीय रूप से लम्बे काम के दिन और भी बोझिल महसूस होने लगे। इसके साथ ही मजदूरों की काम के घण्टों में आवश्यक कमी की मांग भी मजबूत होती गयी।

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में ही अमेरिका में मजदूरों ने "सूर्योदय से सूर्यास्त" तक के काम के समय के विरोध में अपनी शिकायतें जता दी थीं। "सूर्योदय से सूर्यास्त" तक--यही उस समय के काम के घण्टे थे। चौदह, सोलह और यहां तक कि अट्ठारह घण्टे का कार्यकाल भी वहां आम बात थी। 1806 में अमेरिका की सरकार ने फिलडेल्फिया के हड़ताली मोचियों के नेताओं पर साजिश के मुकदमे चलाए। इन मुकदमों में यह बात सामने आई कि मजदूरों से उन्नीस या बीस घण्टों तक काम कराया जा रहा था।

उन्नीसवीं सदी के दूसरे और तीसरे दशक काम के घण्टे कम करने के लिए हड़तालों से भरे हुए थे। कई औद्योगिक केन्द्रों में तो एक दिन में काम के घण्टे दस करने की निश्चित मांगें भी रखी गयीं। 'मेकैनिक्स यूनियन ऑफ फिलडेल्फिया' को, जो दुनिया कि पहली ट्रेड यूनियन मानी जाती है, 1827 में फिलडेल्फिया में काम के घण्टे दस करने के लिए निर्माण-उद्योग के मजदूरों की एक हड़ताल करवाने का श्रेय जाता है। 1834 में न्यूयॉर्क में नानबाइयों की हड़ताल के दौरान *'वर्किंग मेन्स एडवोकेट'* ने छापा था- "पावरोटी उद्योग में लगे कारीगर सालों से मिश्र के गुलामों से भी ज्यादा यातनाएं झेल रहे हैं। उन्हें हर चौबीस में से औसतन् अट्ठारह से बीस घण्टों तक काम करना होता है।"

उन इलाकों में दस घण्टे के कार्य-दिवस की इस मांग ने जल्दी ही एक आन्दोलन का रूप ले लिया। इस आन्दोलन में हालांकि 1837 के संकट से बाधा पड़ी, लेकिन फिर भी यह आन्दोलन दिन-पर-दिन विकसित होता गया, और इसी के चलते वॉन ब्यूरेन की संघीय सरकार को सभी सरकारी कर्मचारियों के लिए काम के घण्टे दस करने की घोषणा करनी पड़ी। पूरे विश्व-भर में काम के घण्टे दस करने का संघर्ष अगले कुछ दशकों में शुरू हो गया। जैसे ही यह मांग कई उद्योगों में मान ली गई, वैसे ही मजदूरों ने काम के घण्टे आठ करने की मांग उठानी शुरू की। पचास के दशक के दौरान लेबर यूनियनों को संगठित करने की गतिविधियों ने इस नयी मांग को काफी बल दिया, हालांकि 1857 के संकट से इसमें भी अवरोध आया था। यह मांग कुछ सुसंगठित उद्योगों में इस संकट के आने से पहले ही मान ली गयी थी। यह आन्दोलन मात्र अमेरिका तक ही सीमित नहीं था। यह आन्दोलन हर उस जगह प्रचलित हो चला था जहां उभरती हुई पूंजीवादी व्यवस्था के तहत मजदूरों का शोषण हो रहा था। यह बात इस तथ्य से सामने आती है कि अमेरिका से दूसरे छोर पर स्थित आस्ट्रेलिया में निर्माण उद्योग के मजदूरों ने यह नारा दिया- "आठ घण्टे काम, आठ घण्टे मनोरंजन, आठ घण्टे आराम" और उनकी यह मांग 1856 में मान भी ली गई।

'काम के घण्टे आठ करो' आन्दोलन की अमेरिका में शुरुआत

वह संघर्ष, जिससे 'मई दिवस' का जन्म हुआ, अमेरिका में, 1884 में, 'काम के घण्टे आठ करो' आन्दोलन से शुरू हुआ। हालांकि इससे एक पीढ़ी पहले भी एक राष्ट्रीय श्रम संगठन, **'नेशनल लेबर यूनियन'** ने, जिसने एक जुझारू सांगठनिक केन्द्र के रूप में विकसित होने की आशा जगाई थी, छोटे कार्य दिवस का प्रश्न उठाया था और इस पर एक आन्दोलन खड़ा करने का प्रस्ताव रखा था। गृहयुद्ध के पहले साल (1861-62) ने कुछ राष्ट्रीय ट्रेड यूनियनों का लोप होते देखा। ये युद्ध शुरू होने के ठीक पहले बनी थीं। इनमें **'मोल्डर्स यूनियन'**, **'मेकिनिस्ट्स और ब्लैकस्मिथ्स यूनियन'** प्रमुख थीं। लेकिन आने वाले कुछ सालों ने कई स्थानीय श्रमिक संगठनों का राष्ट्रीय स्तर पर एकीकरण भी देखा। इन यूनियनों को एक राष्ट्रीय संघ की जरूरत साफ दिखाई देने लगी। 20 अगस्त, 1866 को **'नेशनल लेबर यूनियन'** बनाने वाली तीन ट्रेड यूनियनों के प्रतिनिधि बाल्टीमोर में मिले। राष्ट्रीय संगठन के निर्माण के लिए जो आन्दोलन चला था उसका नेतृत्व **विलियम एच. सिल्विस** ने किया था। वह पुनर्गठित **'मोल्डर्स यूनियन'** का नेता था। सिल्विस हालांकि एक नौजवान आदमी था लेकिन उस समय के श्रमिक आन्दोलनों में उसकी एक महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। सिल्विस का प्रथम इण्टरनेशनल के नेताओं से भी सम्पर्क था जो लन्दन में थे। उसने 'नेशनल लेबर यूनियन' को इण्टरनेशनल की जनरल काउंसिल से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रेरित किया और उसमें मदद भी की।

पार्सन्स, एंजेल, स्पाइस और फिशर फांसी के तख्ते पर, 11 नवम्बर, 1887

1866 में 'नेशनल लेबर यूनियन' के स्थापना समारोह में यह प्रतिज्ञा ली गई:

"इस देश के श्रमिकों को पूंजीवादी गुलामी से मुक्त करने के लिए, वर्तमान समय की पहली और सबसे बड़ी जरूरत यह है कि अमेरिका के सभी राज्यों में आठ घण्टे के कार्य दिवस को सामान्य कार्य दिवस बनाने का कानून पास कराया जाए। जब तक यह लक्ष्य पूरा नहीं होता, तब तक हम अपनी पूरी शक्ति से संघर्ष करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं।"

इसी समारोह में कार्य दिवस को आठ घण्टे करने का कानून बनाने की मांग के साथ ही स्वतंत्र राजनीतिक गतिविधियों के अधिकार की मांग को उठाना भी बहुमत से पारित हुआ। साथ ही यह तय हुआ कि इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए "ऐसे व्यक्तियों का चुनाव किया जाए जो औद्योगिक वर्गों के हितों को प्रोत्साहित करने और प्रस्तुत करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हों।"

'आठ-घण्टा दस्तों' (आठ घण्टे के कार्य दिवस की मांग के लिए बने मजदूर संगठन) का यह निर्माण 'नेशनल लेबर यूनियन' द्वारा किए गए आन्दोलन का ही परिणाम था। और 'नेशनल लेबर यूनियन' की इन गतिविधियों के ही परिणामस्वरूप कई राज्य सरकारों ने आठ घण्टे के कार्य दिवस का कानून पास करना स्वीकार कर लिया था। अमेरिकी कांग्रेस ने ठीक वैसा ही कानून 1868 में पारित कर दिया। इस 'काम के घण्टे आठ करो' आन्दोलन की उत्प्रेरक नेता थीं बोस्टन की मेकेनिस्ट इरा स्टीवर्ड।

हालांकि शुरुआती दौर के श्रमिक आन्दोलन का कार्यक्रम और नीतियां, प्राथमिक थीं और हमेशा उनका प्रभाव नहीं दिखता था, लेकिन फिर भी वह स्वस्थ सर्वहारा नैसर्गिकता पर आधारित थीं। वे एक जुझारू मजदूर आन्दोलन की नींव बन सकतीं थीं। लेकिन बाद में सुधारवादी नेताओं और पूंजीवादी राजनीतिज्ञों ने इन संगठनों को संक्रमित कर दिया और उन्हें गलत मार्ग पर अग्रसर कर दिया। बहरहाल, चार पीढ़ियों पहले, अमेरिकी श्रमिकों के राष्ट्रीय संगठन एन. एल. यू., यानी **'नेशनल लेबर यूनियन'** ने स्वयं को "पूंजीवादी गुलामी" के विरुद्ध घोषित किया और स्वतंत्र राजनीतिक गतिविधि के अधिकार की मांग की।

सिल्विस का लन्दन में इण्टरनेशनल के साथ सम्पर्क जारी था। चूंकि सिविल्स 'नेशनल लेबर यूनियन' का अध्यक्ष था, एन. एल. यू. ने, 1867 के अपने सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग आन्दोलन के साथ सहयोग करने के प्रस्ताव को स्वीकार किया, और 1869 में इण्टरनेशनल की जनरल काउंसिल के आमन्त्रण को स्वीकार किया और इण्टरनेशनल के बासल कांग्रेस में अपना एक प्रतिनिधि भी भेजा। दुर्भाग्य से, सिल्विस की एन. एल. यू. के सम्मेलन से पहले ही मृत्यु हो गयी और शिकागो से छपने वाले *'वर्किंगमेन्स एडवोकेट'* के सम्पादक ए. सी. कैमरॉन सिल्विस के स्थान पर प्रतिनिधि के रूप में सम्मेलन में गए। जनरल काउंसिल ने एक विशेष प्रस्ताव के तहत अपने इस आशावादी नौजवान अमेरिकी श्रमिक नेता की मृत्यु पर शोक जताया-"सबकी आंखें सिल्विस पर रुक गई थीं। सिल्विस के पास अपनी महान क्षमताओं के अलावा अपनी सर्वहारा सेना के जनरल के रूप में दस वर्ष का अनुभव था -और सिल्विस अब नहीं रहे।" सिल्विस की मौत 'नेशनल लेबर यूनियन' के ह्रास का एक बहुत बड़ा कारण बनी। और यह ह्रास जल्दी ही एन. एल. यू. के अन्त के रूप में सामने आया।

'काम के घण्टे आठ करो' आन्दोलन पर मार्क्स के विचार

आठ घण्टे के कार्य दिवस की मांग करने का निर्णय 'नेशनल लेबर यूनियन' ने अगस्त, 1866 में लिया। उसी वर्ष सितम्बर में पहले इण्टरनेशनल की जेनेवा कांग्रेस में इस आठ घण्टे के कार्य दिवस की मांग निम्न रूप से दर्ज हुई-

"काम के दिन की वैध सीमा तय करना एक प्राथमिक शर्त है जिसके बिना मजदूर वर्ग की स्थिति में सुधार या उसकी मुक्ति का कोई भी प्रयास सफल नहीं हो सकता...... यह कांग्रेस आठ घण्टे के कार्य दिवस का प्रस्ताव रखती है।"

1867 में प्रकाशित **'पूंजी'** के पहले खण्ड के "कार्य दिवस" पर आधारित अध्याय में मार्क्स ने 'नेशनल लेबर यूनियन' द्वारा शुरू किए गए 'काम के घण्टे आठ करो' आन्दोलन की ओर ध्यान दिलाया हैं। 'पूंजी' का यह हिस्सा काफी प्रसिद्ध है क्योंकि इसमें मार्क्स ने नीग्रो मजदूरों और श्वेत मजदूरों के वर्ग हितों की एकता के बारे में लिखा है। उन्होंने लिखा है:

"जब तक दास प्रथा गणराज्य के एक हिस्से पर कलंक के समान चिपकी रही, तब तक अमेरिका में कोई भी स्वतंत्र मजदूर आन्दोलन पंगु बना रहा। सफेद चमड़ी वाला मजदूर कभी भी स्वयं को मुक्त नहीं कर सकता जब तक काली चमड़ी वाले मजदूरों को अलग करके देखा जाएगा। लेकिन दास प्रथा की समाप्ति के साथ ही एक नए ओजस्वी जीवन के अंकुर फूटे। 'काम के घण्टे आठ करो' आन्दोलन के साथ ही वहां गृह-युद्ध का श्रीगणेश हुआ। 'काम के घण्टे आठ करो' आन्दोलन--एक ऐसा आन्दोलन था जो द्रुत गति के साथ अटलांटिक से हिन्द तक, न्यू इंग्लैण्ड से कैलिफोर्निया तक फैल गया।"

मार्क्स ने इस बात की ओर ध्यान खींचा कि, किस तरह लगभग साथ-साथ, वास्तव में दो हफ्तों के अंदर, बाल्टीमोर में एक मजदूर सम्मेलन ने आठ घण्टे के कार्य दिवस को बहुमत से पारित किया और इण्टरनेशनल की जेनेवा कांग्रेस ने ठीक वैसा ही निर्णय लिया। "इस तरह अटलांटिक के दोनों ओर मजदूर आन्दोलन ने 'उत्पादन की परिस्थितियों' में गुणात्मक विकास किया।" यह कथन इसी बात को बताता है कि किस तरह कार्य दिवस की सीमाओं को तय करने का आन्दोलन चला और 'काम के घण्टे आठ करो' आन्दोलन के रूप में-साकार हुआ।

जेनेवा कांग्रेस का निर्णय अमेरिकी 'नेशनल लेबर यूनियन' के निर्णय से कैसे मेल खाता है, उसे इस कथन में देखा जा सकता है-"चूंकि कार्य दिवस की सीमाएं तय करने की मांग पूरे अमेरिका के मजदूरों के मांगों को प्रस्तुत करती है, इसलिए यह कांग्रेस इस मांग को पूरी दुनिया के मजदूरों के एक आम मोर्चे का रूप देती है।"

इण्टरनेशनल की कांग्रेस पर, इसी मुद्दे पर अमेरिकी मजदूर आन्दोलन का और जबर्दस्त प्रभाव पड़ा, लेकिन 23 साल बाद।

अमेरिका में मई दिवस का जन्म

1872 में जब पहले इण्टरनेशनल का हेडक्वार्टर लन्दन से न्यूयार्क आया, तो पहला इण्टरनेशनल एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में समाप्त हो गया, लेकिन औपचारिक रूप से इसका अस्तित्व 1876 तक बना रहा। इण्टरनेशनल पुनः गठित हुआ और दूसरे इण्टरनेशनल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दूसरे इण्टरनेशनल की पेरिस कांग्रेस (1889) में पहली मई को उस दिन का रूप दिया गया जिस दिन दुनिया भर के मजदूर अपनी-अपनी राजनीतिक पार्टियों और ट्रेड-यूनियनों के रूप में संगठित हों, और अपनी सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक मांग- आठ घण्टे के कार्य दिवस की मांग के लिए संघर्ष करें। पेरिस कांग्रेस का यह महत्वपूर्ण निर्णय, शिकागो में पांच साल पहले लिए गए एक निर्णय से प्रभावित था। यह निर्णय पांच साल पहले शिकागो में एक नवनिर्मित अमेरिकी मजदूर संगठन-**'द फेडरेशन ऑफ ऑर्गनाइज्ड ट्रेड एण्ड लेबर यूनियन्स ऑफ द यूनाइटेड स्टेट्स एण्ड कनाडा'** जो बाद में अपने संक्षिप्त नाम 'द अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, के प्रतिनिधियों ने लिया था। 7 अक्टूबर, 1884 को इस संगठन के चौथे सम्मेलन में निम्न प्रस्ताव पारित हुआ:

"फेडरेशन ऑफ ऑर्गनाइज्ड ट्रेड एण्ड लेबर यूनियन्स ऑफ द यूनाइटेड स्टेट्स एण्ड कनाडा'' यह तय करती है कि, पहली मई, 1886 से आठ घण्टे का कार्य दिवस वैध कार्य दिवस होगा और हम मजदूर संगठनों से आग्रह करते हैं कि, वे अपनें अधिकारक्षेत्र के अनुसार, अपने नियमों को ऐसे निर्धारित करें कि वे इस प्रस्ताव के अनुकूल हों।"

लेकिन इस प्रस्ताव में कहीं भी यह नहीं बताया गया था कि किस तरह यह संगठन पहली मई को 'आठ घण्टा दिवस' के रूप में प्रचलित करेगा। यह बात खुद इस बात की गवाह है कि जो संगठन 50,000 से ज्यादा सदस्यों का भी नहीं है, वह बिना उन फैक्टरियों, मिलों और खदानों में संघर्ष किए, जिनमें उसके सदस्य काम करते थे, और बिना इस 'काम के घण्टे की आठ करो' आन्दोलन को बिना मजदूरों की और बड़ी आबादी में प्रसारित किए यह कैसे घोषित कर सकता था कि "आठ घण्टे का कार्य दिवस वैध कार्य दिवस होगा।" इस प्रस्ताव का यह कथन कि फेडरेशन से जुड़ी सभी यूनियनें ''अपने नियमों को इस प्रकार निर्धारित करें कि वे इस प्रस्ताव के अनुकूल हों", इस बात से सम्बन्धित हैं कि वे यूनियनें अपने सदस्यों को विशेष हड़ताल-सहायता देंगी जो पहली मई, 1886 से हड़ताल पर जा रहे हैं और हो सकता है कि वे इतने अधिक समय तक हड़ताल पर रहें कि उन्हें यूनियन से सहायता की जरूरत पड़े। चूंकि हड़ताल के समय में मजदूरों के पास जीविका चलाने का कोई साधन नहीं होता था, इसलिए यूनियनें उन्हें हड़ताल के समय विशेष सहायता देतीं थीं। चूंकि यह हड़ताल राष्ट्रीय स्तर पर थी,

(पेज 5 पर जारी)

मई दिवस का इतिहास

(पेज 4 से जारी)

और उन सभी संगठनों को शामिल करती थी जो फेडरेशन से जुड़ी हुई थीं, अतः इन सभी यूनियनों को अपने नियमानुसार अपने सदस्यों से हड़ताल के लिए स्वीकृति प्राप्त कर लेनी थी, खासकर इसलिए भी क्योंकि, इन हड़तालों में उनके फंडों का खर्चा भी शामिल था। यह बात जरूर याद रहे कि यह फेडरेशन यानी आज का 'अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर' स्वैच्छिक और संघीय आधार पर बना था, और राष्ट्रीय सम्मेलन के निर्णय सिर्फ फेडरेशन से जुड़ी यूनियनों पर लागू थे, वह भी तब, जब यूनियनें उन निर्णयों का समर्थन करें।

मई-दिवस की तैयारियां

1877 में जबरदस्त हड़तालें हुईं। इन हड़तालों के दमन के लिए कार्पोरेशनों और सरकार ने सैनिक दस्तेभेजे, जिनका रेल-पथ और स्टील कारखानों के दसियों हजार मजदूरों ने बहादुरी से प्रतिरोध किया। इन संघर्षों का पूरे मजदूर आन्दोलन पर गहरा प्रभाव पड़ा। यह अमेरिका में पहला ऐसा जन-उभार था जो राष्ट्रीय पैमाने पर हुआ था और अमेरिकी मजदूर-वर्ग द्वारा संचालित था। इन संघर्षों में यह मजदूर राज्य और पूंजी की मिली हुई शक्तियों से भले ही हार गए, लेकिन इस दौर के बाद अमेरिकी मजदूर समाज अपनी वर्ग स्थिति की ज्यादा गहरी समझ, एक बेहतर जुझारूपन और बहुत ऊंचे हौसले के साथ उभरा। यह एक तरह से पेन्सिलवेनिया के उन कोयला मालिकों को एक उत्तर था जिन्होंने एन्थ्रासाइट क्षेत्र के खदानकर्मियों के संगठन को तोड़ने की एक कोशिश में दस जुझारू खदानकर्मियों को फांसी दे दी थी।

हालांकि 1880-90 का दशक अमेरिकी उद्योग और घरेलू बाजार के विकास के नजरिए से सर्वाधिक सक्रिय दशक था, लेकिन 1884-85 के वर्ष में मन्दी का एक झोंक आया। वास्तव में यह 1873 के संकट के बाद आवर्ती चक्रीय क्रम में आई हुई मन्दी का ही दौर था। इस दौर में मौजूद बेरोजगारी और जनता द्वारा झेली जा रही कठिन तकलीफों ने छोटे कार्य दिवस के आन्दोलन को एक नई गति दी।

जल्दी ही बने मजदूरों के उस संगठन, **'अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर'** ने उस समय यह संभावना देखी कि 'आठ घण्टे के कार्य दिवस' के नारे को एक ऐसे नारे की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है जो उन सारे मजदूरों को एक झण्डे के नीचे ला सकता है जो न ही फेडरेशन में हैं न ही **'नाइट्स ऑफ लेबर'** में। 'नाइट्स ऑफ लेबर' मजदूरों का एक बहुत पुराना संगठन था जो लगातार बढ़ रहा था। फेडरेशन यह समझ चुका था कि सभी मजदूर संगठनों के साथ मिलकर ही आठ घण्टे के कार्य दिवस के आन्दोलन को सफल बनाया जा सकता है। यही समझकर 'अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर' ने 'नाइट्स ऑफ लेबर' से इस आन्दोलन में सहयोग की अपील की।

फेडरेशन के 1885 के सम्मेलन में आने वाले साल की पहली मई को हड़ताल पर जाने का संकल्प दोहराया गया। कई राष्ट्रीय यूनियनों ने, खासकर बढ़इयों की और सिगार बनाने वालों की यूनियनों ने तो हड़ताल की तैयारियों के कदम भी उठा दिए। पहली मई की हड़ताल के लिए हो रहे आन्दोलनों ने तुरत असर दिखाना शुरू कर दिया। हड़ताली यूनियनों के सदस्यों की संख्या में लगातार बढ़ोत्तरी होने लगी। 'नाइट्स ऑफ लेबर' संगठन ने अपने विकास में कई छलांगें लगाईं। नतीजतन 1886 में मजदूरों का यह जुझारू संगठन अपने शीर्ष पर था। यह बात सामने आई कि उस दौरान 'नाइट्स ऑफ लेबर' ने, जो फेडरेशन से ज्यादा प्रसिद्ध था, और एक बेहद जुझारू संगठन के रूप में जाना जाता था, अपने सदस्यों की संख्या दो लाख से बढ़ा कर सात लाख कर ली थी। फेडरेशन वह संगठन था जिसने इस आन्दोलन की शुरुआत की थी, और हड़ताल की तारीख निश्चित की थी, उसके सदस्यों की संख्या में भी वृद्धि हुई, और मजदूरों की विशाल आबादी में उसका सम्मान भी काफी बढ़ा।

जैसे-जैसे हड़ताल की तारीख करीब आती जा रही थी, यह बात सामने आ रही थी कि 'नाइट्स ऑफ लेबर' का नेतृत्व, खासकर **टेरेंस पाउडरली** का नेतृत्व आन्दोलन को नुकसान पहुंचा रहा है, और यही नहीं वह अपने से जुड़ी यूनियनों को हड़ताल में हिस्सा न लेने की सलाह दे रहा है। फेडरेशन अभी भी लगातार मजदूरों के बीच लोकप्रिय होता जा रहा था। दोनों संगठनों के जुझारू मजदूर सदस्यों की कतारें लगातार, उत्साहपूर्वक, हड़ताल की तैयारियां कर रहीं थीं। कई शहरों में 'आठ-घण्टा दस्ते' और इसी तरह के अन्य जत्थे उभरे। इनके उभरने से पूरे आन्दोलन में मजदूरों के बीच जुझारूपन की भावना में जबर्दस्त बढ़ोत्तरी हुई। इस लहर से असंगठित मजदूर भी अछूते नहीं रहे।, वे भी बढ़-चढ़ कर आन्दोलन में हिस्सा लेने लगे। अमेरिकी मजदूर वर्ग के लिए एक नई सुबह आ रही थी।

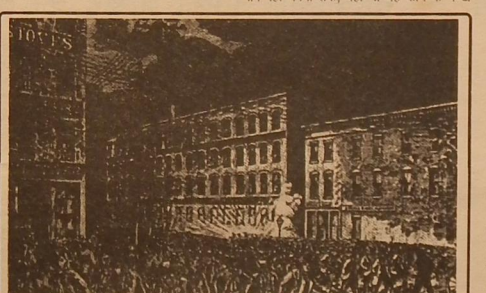

मजदूरों के मिजाज को समझने का सबसे अच्छा रास्ता है कि, उनके संघर्षों की गम्भीरता और विस्तार के बारे में अध्ययन किया जाये, उसे समझा जाये। एक समय में मजदूरों के लड़ाकू मिजाज को उस दौरान हुई हड़तालों की संख्या से समझा जा सकता है। पिछले सालों में हुई हड़तालों की संख्या के मुकाबले 1885 से 1886 के दौरान हुई हड़तालों की संख्या, उस समय के मजदूरों के उस जबर्दस्त लड़ाकूपन को दर्शाती है जो उस समय आन्दोलन को आगे बढ़ा रहा था। मजदूर पहली मई 1886 की महान हड़ताल की तैयारियां तो कर ही रहे थे, लेकिन 1885 में ही हड़तालों की संख्या में जबरदस्त बढ़ोत्तरी हो गयी थी। 1881 से 1884 के दौरान हड़तालों और तालाबन्दियों का औसत था मात्र 500 प्रति वर्ष, और उसमें भाग लेने वाले मजदूर थे औसतन 1,50,000 प्रति वर्ष। 1885 में हड़तालों और तालाबन्दियों की गिनती 700 तक जा पहुची और भाग लेने वाले मजदूरों की संख्या बढ़कर हो गई 2,50,000। 1886 में तो हड़तालों की संख्या 1885 की तुलना में दोगुनी होकर 1,572 जा पहुंची और उसी अनुपात में हड़तालों और तालाबन्दियों में हिस्सा लेने वाले मजदूरों की संख्या भी बढ़कर 6,00,000 हो गयी। इन हड़तालों की व्यापकता का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1885 में इन हड़तालों से प्रभावित प्रतिष्ठानों की संख्या 2,467 थी और अगले साल ही यह संख्या बढ़कर 11,562 जा पहुंची। 'नाइट्स ऑफ लेबर' के नेतृत्व की खुली गद्दारी के बावजूद यह अन्दाजा लगाया गया कि, लगभग 5 लाख मजदूर 'काम के घण्टे आठ करो' आन्दोलन में सीधे शिरकत कर रहे हैं।

मजदूरों के जुलूस पर पुलिस द्वारा गोली वर्षा के विरोध में हे मार्केट, शिकागो में आयोजित जनसभा। इसी सभा में एक पुलिस के एजेंट ने मजदूरों को फंसाने के लिए बम-विस्फोट किया, जिसके अभियोग में पार्सन्स, एंजेल, स्पाइस और फिशर को फांसी की संजा दे दी गई।

हड़ताल का केन्द्र शिकागो था, जहां हड़ताल सबसे ज्यादा व्यापक थी, लेकिन पहली मई को कई और शहर इस मुहिम में जुड़ गए थे। न्यूयार्क, बाल्टीमोर, वाशिंगटन, मिलवॉकी, सिंसिनाटी, सेंटलूई, पिट्सबर्ग, डेट्रॉइट समेत अनेक शहरों में हड़ताल का शानदार प्रदर्शन हुआ। इस आन्दोलन की सबसे बड़ी खासियत यह थी कि इसने अकुशल और असंगठित मजदूरों को भी हड़ताल में खींच लिया था। उस दौरान वे अनुनादी हड़तालें काफी प्रचलित थीं। पूरे देश में एक विद्रोही भावना फैल चुकी थी, बुर्जुआ इतिहासकार "सामाजिक युद्ध" और "पूंजी से घृणा" की बातें कर रहे थे, जो उस दौरान सुस्पष्ट होकर सामने आ चुकीं थीं। साथ ही वे मजदूरों की उन कतारों की बातें कर रहे थे, जो उस समय आन्दोलन के रथ को आगे बढ़ा रहीं थीं। यह अनुमान लगाया गया कि वे मजदूर जिन्होंने पहली मई को हड़ताल की थी उनमें से आधे सफल रहे थे और जहां वे आठ घण्टे के कार्य दिवस की मांग नहीं मनवा सके, वहां भी वह काम के घण्टों में पर्याप्त कमी करवाने में सफल रहे।

शिकागो की हड़ताल और हे मार्केट

पहली मई को शिकागो में हड़ताल का रूप सबसे आक्रामक था। शिकागो उस समय जुझारू वामपंथी मजदूर आन्दोलन का केन्द्र था। हालांकि वह आन्दोलन मजदूरों की समस्याओं पर पर्याप्त रूप से साफ राजनीतिक रुख नहीं रखता था, फिर भी वह एक लड़ाकू और जुझारू आन्दोलन था। वह मजदूरों का, आन्दोलन में जुझारू भावना बढ़ाने के लिए, आह्वान करने को हमेशा तैयार रहता था, ताकि मजदूरों के जीवन की स्थितियों और काम करने की स्थितियों में सुधार लाया जा सके।

चूंकि शिकागो की हड़ताल में कई जुझारू मजदूर दलों ने भाग लिया, इसलिए ऐसा माना गया कि शिकागो में हड़ताल सबसे बड़े पैमाने पर हुई। एक 'आठ-घण्टा एसोसिएशन' काफी पहले ही इस हड़ताल की तैयारी के लिए बन गया था। वामपंथी लेबर यूनियनों से बनी **'सेन्ट्रल लेबर यूनियन'** ने 'आठ-घण्टा एसोसिएशन' को पूरा सहयोग दिया, जो एक संयुक्त मोर्चा था, जिसमें फेडरेशन से लेकर 'नाइट्स ऑफ लेबर' और 'सोशलिस्ट लेबर पार्टी' तक शामिल थीं। 'सोशलिस्ट लेबर पार्टी' अमेरिकी मजदूर वर्ग की पहली संगठित समाजवादी राजनीतिक पार्टी थी। पहली मई के पिछले दिन रविवार को 'सेन्ट्रल लेबर यूनियन' ने एक लामबन्दी प्रदर्शन किया जिसमें 25,000 मजदूरों ने हिस्सा लिया।

पहली मई को शिकागो में मजदूरों का एक विशाल सैलाब उमड़ा और संगठित मजदूर आन्दोलन के आह्वान पर शहर के सारे औजार चलने बन्द हो गए और मशीनें रुक गयीं। मजदूर आन्दोलन को कभी भी वर्ग-एकता के इतने शानदार और प्रभावी प्रदर्शन का एहसास नहीं हुआ था। उस समय आठ घण्टे के कार्य-दिवस के महत्व ने, और हड़ताल के चरित्र और विस्तार ने पूरे आन्दोलन को एक विशेष राजनीतिक अर्थ दे दिया। अगले कुछ दिनों में यह राजनीतिक अर्थ और भी गहरा होता गया। 'काम के घण्टे आठ करो' आन्दोलन पहली मई, 1886 की हड़ताल में अपनी पराकाष्ठा पर था। और इसने अमेरिकी मजदूर वर्ग की लड़ाई के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया था।

इस दौरान मजदूरों के दुश्मन भी चुप नहीं बैठे रहे। शिकागो में मालिकों और शहर के प्रशासन की मिली-जुली शक्तियों ने, जो जुझारू नेताओं को खत्म करने के लिए, और इसके जरिए शिकागो के समग्र मजदूर आन्दोलन को रौंद डालने के लिए छटपटा रहीं थीं, मजदूरों के जुलूस को गिरफ्तार कर लिया। 3 और 4 मई की घटनाएं जो 'हे मार्केट कांड' के नाम से जानीं जातीं हैं, साफ तौर पर पहली मई की हड़ताल का परिणाम थीं। 4 मई को हे मार्केट स्क्वायर पर हुए प्रदर्शन में, 3 मई को **'मैककार्मिक रीपर वर्क्स'** पर मजदूरों की एक सभा पर पुलिस के बर्बर हमले का विरोध करने का आह्वान किया गया। इस क्रूर हमले में छः मजदूर मारे गए थे और कई घायल हुए थे। वह सभा जो हे मार्केट स्क्वायर पर हो रही थी, खत्म ही होने वाली थी कि पुलिस ने मजदूरों की भीड़ पर हमला कर दिया। भीड़ में एक बम फेंका गया। इस हमले में चार मजदूर और सात पुलिसवाले मारे गये। हे मार्केट का भयंकर रक्तपात, पार्सन्स, स्पाइस, फिशर और एंजेल की फांसी और शिकागो के तमाम जुझारू नेताओं की कैद संघर्षरत मजदूरों को शिकागो के मालिकों का जवाब था। पूरे देश के मिलो-फैक्टरियों के मालिकों को चेतावनी मिल चुकी थी। 1886 के उत्तरार्द्ध में मालिकों ने 1885-86 के आन्दोलन के दौरान खोई हुई अपनी पुरानी स्थिति को फिर से पाने के लिए काफी आक्रामक रूख अपनाया।

शिकागो के मजदूर नेताओं की फांसी के एक साल बाद, फेडरेशन, (जो अब 'अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर' के नाम से प्रसिद्ध हो चुका था) के सेंट लूई के सम्मेलन में, 1888 में, 'काम के घण्टे आठ करो' आन्दोलन को नए सिरे से जीवित करने का संकल्प लिया गया। पहली मई को, जो अब एक परम्परा बन चुकी थी, और जो दो साल पहले मजदूरों के राजनीतिक वर्ग-प्रश्न के आधार पर हुए संघर्ष का केन्द्र-बिन्दु बन चुकी थी, फिर से 'काम के घण्टे आठ करो' आन्दोलन के पुनरारंभ का दिन बनने का सम्मान मिला। पहली मई, 1890 को पूरे देश में छोटे कार्य-दिवस के लिए हड़तालें हुईं। 1889 के सम्मेलन में 'अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर' के नेता सैमुएल गोम्पर्स के नेतृत्व में हड़ताल आन्दोलन को सीमित करने की नीच कोशिश कामयाब हो गई। यह तय हुआ 'कारपेन्टर्स यूनियन', जिसे हड़ताल के लिए सबसे अच्छी तरह से तैयार यूनियन माना जाता था, हड़ताल में पहल करेगी और अगर यह पहल सफल सिद्ध होगी तो दूसरी यूनियनें भी हड़ताल में कूद पड़ेंगीं।

क्रमशः

अनुवादः अभिनव सिन्हा

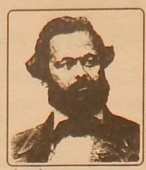

सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक, नेता और वैज्ञानिक समाजवाद के जनक कार्ल मार्क्स के जन्मदिन (5 मई) के अवसर पर

'पूंजीपति वर्ग के अस्तित्व और प्रभुत्व की लाजिमी शर्त पूंजी का निर्माण और वृद्धि है; और पूंजी की शर्त है उजरती श्रम। उजरती श्रम पूर्णतया मजदूरों की आपसी होड़ पर निर्भर करता है। उद्योग की उन्नति, जिसे पूंजीपति वर्ग अनिवार्यतः अग्रसर करता है, होड़ के कारण उत्पन्न मजदूरों के अलगाव की जगह पर उनका संसर्गजनित क्रान्तिकारी एका कायम कर देती है। इस तरह आधुनिक उद्योग का विकास पूंजीपति वर्ग के पैरों के नीचे से उस जमीन को ही खिसका देता है जिसके आधार पर वह उत्पादन करता है और पैदावार को हड़प लेता है। अतः पूंजीपति वर्ग सर्वोपरि अपनी कब्र खोदनेवालों को पैदा करता है। उसका पतन और सर्वहारा वर्ग की विजय दोनों समान रूप से अनिवार्य है।'

('कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र' से)

तराई क्षेत्र में मई दिवस पर मजदूरों का जुलूस और जनसभा

मई दिवस पर मजदूरों का आह्वान:

अपनी क्रान्तिकारी विरासत को पहचानो! एक नयी क्रान्ति की मशाल जलाओ!!

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर), 1 मई। "मई दिवस के क्रान्तिकारी शहीदों की विरासत को आगे बढ़ाने का आज एकमात्र अर्थ यही है कि देश के मजदूर आन्दोलन को अर्थवाद-सुधारवाद के चंगुल से बाहर निकालकर नई क्रान्तिकारी धार दी जाए।"

मई दिवस पर स्थानीय गांधी पार्क पर आयोजित सभा को सम्बोधित करते हुए वक्ताओं ने उपरोक्त बातें कहीं। सभा के दौरान मजदूर साथियों ने इस अवसर पर सरकारी दलाल और नौकरशाह ट्रेड यूनियन नेताओं को उखाड़ फेंकने का आह्वान किया गया।

सभा से पूर्व हजारों की संख्या में तराई क्षेत्र के मजदूरों-महिलाओं ने जुलूस निकाला। जुलूस की शुरुआत ए.एल.पी. कारखाने के मजदूरों के धरना स्थल से हुई जो नगर के विभिन्न हिस्सों से गुजरते हुए गांधी पार्क में पहुंचकर सभा में तब्दील हो गया। जहां नारी सभा द्वारा क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किया गया।

जुलूस से पूर्व आनन्द निशिकावा (ए.एल.पी.) के मजदूरों के धरना स्थल पर आयोजित सभा को सम्बोधित करते हुए आनन्द निशिकावा श्रमिक संगठन के प्रयागदत्त भट्ट ने कहा कि मजदूर अगर पूरे इलाके के पैमाने पर अपनी एकजुटता नहीं कायम करेंगे तो एक-एक कारखाने के मजदूर अलग-अलग लड़कर मालिकों के जुल्म का मुकाबला नहीं कर सकते। **'बिगुल मजदूर दस्ता'** के **विजय कुमार** ने आज के दौर में एक ऐसे क्रान्तिकारी मजदूर अखबार की जरूरत को रेखांकित किया जो पूंजीपतियों और उनकी सरकार की मजदूर-विरोधी नीतियों का खुलासा कर सके, मजदूरों के बीच घुसे दलालों का पर्दाफाश करे और महज अर्थवादी लड़ाई से ऊपर उठकर मजदूरों को राजनीतिक संघर्ष छेड़ने के लिए शिक्षित-प्रशिक्षित करे।

गांधी पार्क में आयोजित सभा में **श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन** के अध्यक्ष **राजेन्द्र सिंह रावत** ने लम्बे संघर्षों के दौरान अर्जित श्रम कानूनों को बदले जाने की खतरनाक सरकारी साजिश की धज्जियां उड़ाते हुए मजदूरों की एकजुटता का आह्वान किया। **आनन्द निशिकावा श्रमिक संगठन** के **शिवपद सरकार** ने विगत दो माह से आनन्द निशिकावा के श्रमिकों के चल रहे संघर्ष की चर्चा करते हुए प्रबन्धकों और जिला प्रशासन के नापाक गठबन्धन का खुलासा किया। उन्होंने कहा कि आन्दोलनरत हमारे बेगुनाह मजदूर साथियों की गिरफ्तारी और अदालत द्वारा जमानत तक का नामंजूर कर देने की कार्रवाई से यही साबित होता है कि पुलिस-फौज, कोर्ट-कचहरी सभी पूंजीपतियों की सेवा के लिए हैं।

'बिगुल मजदूर दस्ता' के **मुकुल श्रीवास्तव** ने कहा कि विगत आठ वर्षों से देशी-विदेशी लुटेरों के गठजोड़ द्वारा आर्थिक नीतियों के परिणाम स्वरूप लगभग ढाई लाख छोटे-बड़े उद्योग बन्द किए जा चुके हैं और तकरीबन चार करोड़ आबादी सड़कों पर ढकेली जा चुकी है। नये-नये मजदूर-विरोधी कानून लागू हो रहे हैं। हालात इस बात के साक्षी हैं कि अब पूंजीवादी लुटेरे पगलाये कुत्ते की तरह व्यवहार कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि ऐसे दौर में मई दिवस के क्रान्तिकारी शहीदों का सपना आज नए सिरे से एक नयी चुनौती बनकर सामने खड़ा है और हमारे कार्यभारों की याद दिला रहा है।

'क्रान्तिकारी लोक अधिकार संगठन' के **वेद व्यास मुनि तिवारी** ने शासकों द्वारा थोपी जा रही नीतियों पर चोट करते हुए कहा कि इस दौर में जबकि उद्योगों का आधुनिकीकरण हो रहा है तो मजदूरों के काम के घण्टों को कम किया जाना चाहिए। जबकि ठीक इसके विपरीत मजदूरों के खून और पसीने को और ज्यादा निचोड़ा जा रहा है। **नारी सभा** की **हंसी जोशी** ने मई दिवस के शहीद क्रान्तिकारी नेता अल्बर्ट पार्सन्स की पत्नी लूसी पार्सन्स द्वारा न्यायालय में दिये गये बयान का पाठ करते हुए आधी आबादी की लड़ाई को पूरे मेहनतकश के मुक्ति संघर्षों से जोड़ने का आह्वान किया।

'जनहित रक्षा मंच' के **प्रताप सिंह** ने कहा कि शोषणमुक्त समाज बनाने के लिए गांव के खेतिहर मजदूरों से लेकर शहरों में छोटे-छोटे रोजगार में लगे मजदूरों तक को एकजुट होना होगा। **श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन** के **रामचन्द्र शर्मा** ने प्रबन्धकों और अवसरवादी तत्वों द्वारा जातिवाद-क्षेत्रवाद फैलाने के साजिशों के प्रति सतर्क होकर मजदूरों से अपनी चट्टानी एकता कायम करने पर जोर दिया।

सभा में **आपरेटर यूनियन** के **आर. सी. खन्ना**, **विद्युत कर्मचारी यूनियन** के **जखमोला**, **बी. एच. ई. एल.** (भेल) के **दिनेश जोशी** व **मुन्ना लाल**, **श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन** के महामंत्री **बी. सी. पाण्डेय** ने भी अपने विचार प्रकट किए। सभा का संचालन **'बिगुल मजदूर दस्ता'** के सुध

(पेज 7 पर जारी)

मई दिवस के शोलों को दहकाओ! उनको बारूद की ढेरी तक पहुंचाओ!!

(पेज 1 से जारी)

छोटी-मोटी मांगों या आर्थिक मांगों के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिए। **'खारकोव में मई दिवस'** नामक पुस्तिका की भूमिका में आगे उन्होंने लिखा था, "**आठ घण्टों के काम के दिन की मांग समस्त सर्वहारा वर्ग की मांग है। यह मांग किसी व्यक्तिगत मालिक के पास नहीं पेश की जाती, बल्कि आज की पूरी सामाजिक और राजनीतिक प्रणाली की प्रतिनिधि-सरकार के सामने पेश की जाती है। यह मांग पूरे पूंजीपति वर्ग के सामने, उत्पादन के सभी साधनों के मालिकों के सामने पेश की जाती है।**"

इसीलिए 1893 में **दूसरे इण्टरनेशनल** के ज्यूरिख सम्मेलन के मई दिवस सम्बन्धी प्रस्ताव में **फ्रेडरिक एंगेल्स** ने यह जुड़वाया था कि पहली मई के प्रदर्शन द्वारा आठ घण्टों के कार्यदिवस की मांग के साथ मजदूर वर्ग को यह भी प्रदर्शित करना चाहिए कि वह सामाजिक क्रान्ति द्वारा वर्ग-भेद मिटाकर विश्वशान्ति के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए कटिबद्ध है।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ से मई दिवस अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा के राजनीतिक आन्दोलन का केन्द्रबिन्दु बन चुका था और आठ घण्टे के काम के दिन के नारे के साथ ही साम्राज्यवाद, पूंजीवाद और उपनिवेशवाद-विरोधी अन्य महत्वपूर्ण राजनीतिक नारे भी जुड़ चुके थे।

कार्ल काउत्स्की के जमाने और **ख्रुश्चेव** के जमाने से लेकर आजतक, यूरोप के संशोधनवादियों-अर्थवादियों से लेकर भारत के **भाकपा**, **माकपा** और **भाकपा (मा-ले) (लिबरेशन)** तक सभी नकली वामपंथी, सर्वहारा वर्ग की सभी संगठित कार्रवाइयों को अलग-अलग कारखानों की आर्थिक मांगों या अन्य छोटी-मोटी मांगों तक और फिर चुनावी सरगर्मियों तक ही सीमित रखना चाहते हैं। वे सर्वहारा वर्ग को उन राजनीतिक संघर्षों से अलग रखना चाहते हैं, जो किसी एक मालिक पूंजीपति के बजाय, समूचे पूंजीपति वर्ग और समूची पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ होते हैं। ऐसा वे इसलिए करते हैं कि सर्वहारा वर्ग इसी व्यवस्था के भीतर रियायतों की भीख, रोटी के टुकड़ों और उजरत में चंद सिक्कों की बढ़ोतरी की ही मांग करता रहे और पूंजीवादी उत्पादन, राजकाज और सामाजिक ढांचे पर सवाल न उठाये, इस व्यवस्था की चौहद्दी को तोड़ना तो दूर, इसके आगे झांके तक नहीं। इन्हीं रंगे सियारों ने मई दिवस को आज महज एक रस्म बना दिया है और उसकी सच्ची क्रान्तिकारी भावना को वे दीमक की तरह चाट गये हैं।

बीसवीं सदी के आखिरी साल में मई दिवस के शहीदों को याद करने का यही तरीका हो सकता है कि **हम मई दिवस की सच्ची क्रान्तिकारी स्पिरिट को बहाल करने की कसम खायें, मजदूर वर्ग को उसके सच्चे ऐतिहासिक मिशन की याद दिलाने के लिए अहद लें और रोजमर्रे के आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ उसे राजनीतिक मांगों और अधिकारों के लिए तथा चरम राजनीतिक लक्ष्य--राज्यसत्ता पर बलात् कब्जा के लिए जागृत करें, गोलबन्द करें और संगठित करें।**

सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान की यह बुनियादी शिक्षा है कि पूंजीवादी व्यवस्था के भीतर आर्थिक मांगों के लिए संघर्ष मजदूरों की रोजमर्रे की जिन्दगी की जरूरत है। काम और जीवन स्थितियों को बदलने से सम्बन्धित वे मांगें, जो एक मालिक से नहीं, बल्कि पूरे पूंजीपति वर्ग और उसकी हुकूमत से की जाती हैं, उनकी प्रकृति राजनीतिक होती है। इन मांगों के लिए लड़ते हुए मजदूर वर्ग व्यापक राजनीतिक सवालों के रूबरू होता है और धीरे-धीरे इस बात से परिचित होता है कि "*वह अपने जीवन की अवस्थाओं का उन्मूलन किये बिना अपने को स्वतंत्र नहीं कर सकता*" और "वह आज के समाज के जीवन की तमाम अमानवीय अवस्थाओं, जो उसकी स्थिति में संकेन्द्रित हैं, उन्मूलन किये बिना अपने जीवन की अवस्थाओं का उन्मूलन नहीं कर सकता" (**मार्क्स-एंगेल्स: 'पवित्र परिवार'**)।

सर्वहारा वर्ग का हरावल दस्ता- क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट उसे राजनीतिक संघर्षों और उसके साथ-साथ लगातार राजनीतिक प्रचार एवं शिक्षा के जरिए यह समझ देते हैं कि **बुनियादी प्रश्न राज्यसत्ता का है**--यानी पूंजीवादी राज्यसत्ता का ध्वंस करके सर्वहारा राज्यसत्ता स्थापित करने का है। अर्थवादी-संशोधनवादी भांड़, मजदूर वर्ग को सिर्फ आर्थिक मांगों के लिए लड़ने की (और आज तो वे लड़ना भी नहीं सिर्फ गिड़गिड़ाना सिखा रहे हैं) शिक्षा देते हैं और व्यापक राजनीतिक मांगों से उसे दूर रखने की हर चंद कोशिश करते हैं। ऐसे नकली कम्युनिस्टों के बारे में हिन्दुस्तान के मजदूर वर्ग को ज्यादा बताने की जरूरत नहीं है, क्योंकि ट्रेड यूनियनों से लेकर संसद तक में उनकी करतूतें जगजाहिर हैं।

राजनीतिक संघर्ष की प्रक्रिया में मजदूर वर्ग अपने कारखानों से बाहर देशव्यापी एकजुटता कायम करने की चेतना हासिल करता है और पूरी दुनिया के मेहनतकशों से भी एकता महसूस करता है। साथ ही, इसी प्रक्रिया में, वह अन्य मेहनतकश वर्गों से भी जुड़ता है, जो इस व्यवस्था में लगातार पिस रहे हैं, जिन्हें भी मुक्ति की जरूरत है और इस व्यवस्था को उलट डालने के लिए जिन्हें साथ लेना अनिवार्य है।

मई दिवस मजदूर वर्ग के राजनीतिक संघर्ष का परचम है। इसीलिए, मजदूर वर्ग उसे **अन्तराष्ट्रीय मजदूर दिवस** के रूप में मनाता है। मई दिवस अन्तराष्ट्रीय मजदूर वर्ग का त्यौहार है। पर मजदूर वर्ग अपने शहीदों और उनकी कामयाबियों को याद करने का त्यौहार उस तरह नहीं मनाता, जैसे बुर्जुआ वर्ग मनाता है। यह चुनावी कम्युनिस्टों का काम है कि झण्डे फहराकर, भाषण देकर, छुट्टी मनाकर, लड्डू खाकर रस्म-अदायगी कर लें। सच्चा क्रान्तिकारी मजदूर वर्ग आज मई दिवस के अवसर पर सिर्फ शहीदों के रक्त से लथपथ अपनी सफलताओं और जीतों को ही याद नहीं करेगा, बल्कि इस बात पर भी सोचेगा कि वे जीतें हार में कैसे बदल गईं और इस हार को फिर जीत में कैसे बदला जा सकता है।

आज से सौ से भी अधिक वर्षों पहले दुनिया के मजदूरों ने काम के घण्टे कम करने और नौकरी तथा जीवन की बुनियादी जरूरतों से सम्बन्धित जो राजनीतिक अधिकार, तथा जो अन्य जनवादी अधिकार जुझारू, संगठित संघर्षों के जरिए हासिल किये थे, और सर्वहारा क्रान्तियों ने जिन अधिकारों को और अधिक पुख्ता बनाया था; आज अमेरिका, यूरोप, जापान, रूस और भूतपूर्व सोवियत संघ के अन्य घटक देशों तक में पूंजीपति वर्ग उनपर खुली डकैती डाल रहा है। तीसरी दुनिया के देशों में सत्तारूढ़ पूंजीपतियों ने साम्राज्यवादियों की पूंजी और तकनोलॉजी की मदद से अपने-अपने देश के मजदूरों को निचोड़ने के लिए जबसे निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों को लागू करना शुरू किया है, मजदूरों के अधिकारों में कटौतियों का सिलसिला लगातार जारी है।

भारत के मजदूरों ने अंग्रेजों की गुलामी के दौर से लेकर नेहरू के शासन काल तक लड़कर जो राजनीतिक अधिकार हासिल किये थे; गत आठ वर्षों के दौरान वे एक-एक करके लगातार छीने जाते रहे हैं और अब नये श्रम कानून बनाकर मजदूरों के बचे-खुचे अधिकारों पर भी कुल्हाड़ी गिराने की तैयारी हो चुकी है। नकली वामपंथियों सहित सभी पार्टियां नई आर्थिक नीतियों के तहत प्रस्तावित नये श्रम कानूनों पर एकमत हैं। नई सरकार चाहे जिस पार्टी की बने, ये बदलाव होने ही हैं। वैसे संसद में दिखाने के लिए कुछ विरोध और संशोधन का नाटक तो होगा ही। प्रस्तावित नये श्रम कानूनों के तहत ज्यादा से ज्यादा मजदूर ठेका प्रथा पर रखे जायेंगे, न सिर्फ पूंजीपतियों के कारखानों में बल्कि सरकारी कारखानों व विभागों में भी। मजदूरों को निकालने, छंटनी करने, काम के घण्टे व अन्य सेवा शर्तें तय करने के मामले में सरकारी हस्तक्षेप लगभग समाप्त कर दिया जायेगा यानी सब कुछ पूंजीपतियों की मर्जी पर होगा। साथ ही सरकार कुछ "मुक्त व्यापार क्षेत्र" बनायेगी जहां के देशी-विदेशी कारखानेदारों पर भारत का श्रम कानून लागू ही नहीं होगा। ट्रेड यूनियन बनाने की कोशिश मात्र पर श्रमिकों को निकाल देना और चौदह-चौदह, अट्ठारह-अट्ठारह घण्टे काम लेना तब आम बात होगी।

वैसे सच्चाई तो यह है कि उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र से लेकर दिल्ली के आसपास के नये औद्योगिक क्षेत्र तक अत्याधुनिक कारखानों में भी, अभी ही श्रम कानूनों का कोई मतलब नहीं रह गया है। बड़े पैमाने पर काम ठेका मजदूरों और अनियमित व अस्थायी मजदूरों से कराया जाता है। जहां थोड़ी संख्या में नियमित मजदूर हैं, उनको भी या तो यूनियन ही नहीं है या फिर मालिकों की दलाल यूनियन है। कहीं यदि मजदूर किसी कारखाने में सीमित आर्थिक मांग को लेकर भी आन्दोलन करते हैं तो उन्हें मालिकों के गुण्डों से लेकर प्रशासन-पुलिस तक के आतंक राज्य का सामना करना पड़ता है। यही अधिकांश औद्योगिक क्षेत्रों की आज की तस्वीर है। नये श्रम कानून इसी स्थिति को और अधिक व्यापक और सुनिश्चत बनाने का काम करेंगे।

जिस महान संघर्ष ने मई दिवस को जन्म दिया था, उसकी उपलब्धि भी आज इस हद तक छीनी जा चुकी है कि काम के घण्टे फिर आठ से बढ़ाकर दूने तक किये जा रहे हैं। भारत में, लगभग अस्सी फीसदी मजदूर वर्ग असंगठित क्षेत्र में हैं और वह पहले से ही चौदह-सोलह घण्टे तक काम करता है। जीवन की न्यूनतम सुविधाएं और सरकार स्वीकृत न्यूनतम मजदूरी का उसके लिए कोई मतलब नहीं। और अब संगठित मजदूर वर्ग पर फैसलाकुन चोट के लिए शासक वर्ग तैयार है।

इस स्थिति का दूसरा पहलू यह है कि धीरे-धीरे मजदूर वर्ग न सिर्फ वर्तमान बुर्जुआ और चुनावी वामपंथियों के नेतृत्व वाले ट्रेड यूनियन आन्दोलन की असलियत समझता जा रहा है, बल्कि हालात उसके कानूनी भ्रमों का कोहरा और अर्थवादी संकुचित मानसिकता की काई भी छांटते जा रहे हैं। आज मई दिवस का सन्देश यही हो सकता है कि मजदूर वर्ग को यह बताया जाये कि अलग-अलग कारखानों में मालिकों से लड़कर वह अपनी आर्थिक मांगें भी आज नहीं मनवा सकता। उसे पूरे पूंजीपति वर्ग के सामने, साम्राज्यवाद-पूंजीवाद की चाकर सत्ता के सामने अपनी राजनीतिक मांगों का चार्टर सूत्रबद्ध करके पेश करना होगा और यह लड़ाई किसी एक या दो कारखाने या किसी एक सेक्टर या इलाके के मजदूरों की नहीं बल्कि समूचे मजदूर वर्ग की होगी। यह लड़ाई मजदूर वर्ग के भविष्य के लिए तो है ही, आज स्थिति यह है कि यह वर्तमान की फौरी लड़ाई भी बन चुकी है। हमारी दृढ़ धारणा है कि आज क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार और शिक्षा के सन्देश को मजदूर वर्ग सुनेगा। उसे सुनना होगा, क्योंकि यह साफ होता जा रहा है कि मजदूर वर्ग आर-पार की लड़ाई लड़कर ही कुछ पा सकता है। एक बार फिर उसे काम का कम घण्टों की निश्चितता के लिए, निकाले जाने व छंटनी के विरुद्ध अधिकार के लिए, संगठन बनाने के अधिकार के लिए और जीवन की बुनियादी जरूरतें पूरी किये जाने तथा बेहतर जिन्दगी के अधिकार के लिए लड़ना है। इन्हीं राजनीतिक मांगों से शुरू करके मजदूर वर्ग को आज एक नई शुरुआत करनी होगी।

भारतीय पूंजीपति वर्ग, उनके सरपरस्त साम्राज्यवादी और देशी-विदेशी पूंजी को चाकर सत्ता लगातार अपने कामों से और फैसलों से बारूद की ढेरी इकट्ठा करती जा रही है। **क्रान्तिकारी सर्वहारा संगठनकर्ताओं और बिगुल** जैसे क्रान्तिकारी मजदूर अखबारों का काम मई दिवस के शोलों को हवा देना है और फिर उन्हें उस बारूद की ढेरी तक पहुंचाना है।

मई दिवस पर रेल मजदूर अधिकार मोर्चा की गेट मीटिंग

मजदूर आन्दोलन को इंकलाबी धार देने का आह्वान

गोरखपुर, (बिगुल प्रतिनिधि)। रेल मजदूर अधिकार मोर्चा ने मजदूरों के त्यौहार मई दिवस के अवसर पर रेलवे प्रेस गेट के सामने एक गेट मीटिंग का आयोजन किया जिसमें वक्ताओं ने मई दिवस के अमर शहीदों की विरासत को आगे बढ़ाने के लिए व्यापक मजदूर एकता कायम करने और मजदूर आन्दोलन को इंकलाबी धार देने का आह्वान किया।

सभा को सम्बोधित करते हुए रेल मजदूर अधिकार मोर्चा की केन्द्रीय संयोजन समिति के सदस्य आदेश कुमार ने कहा कि ट्रेड यूनियनों के अधिकांश नेताओं ने मई दिवस के शहीदों के सपनों को भुला दिया है। मजदूरों को सिर्फ वेतन-एरियर-बोनस-भत्ता की लड़ाई में उलझाकर, खण्ड-खण्ड में बांटकर वे अपनी धन्धेबाजी चला रहे हैं। नतीजा यह है कि आज जब देश की सरकारें देशी-विदेशी पूंजीपतियों की सेवा के लिये निजीकरण-छंटनी-तालाबन्दी का पाटा चला रही हैं और लम्बे संघर्षों तथा भारी कुर्बानियों के बाद हासिल मजदूरों के अधिकारों को छीन रही हैं तो मजदूर वर्ग असहाय नजर आ रहा है।

आदेश कुमार ने रेल मजदूरों को चेत जाने का आह्वान करते हुए कहा कि किश्तों में पूरे रेल विभाग के निजीकरण की योजना बनायी जा चुकी है और सरकार के साथ पांचवे वेतन आयोग की सिफारिशों पर समझौता कर नेताओं ने इसपर मुहर भी लगा दी है। यदि रेल मजदूर चुप रहा तो वह दिन दूर नहीं जब रेल के तमाम वर्कशापों में चमगादड़ लटकेंगे और कबूतर घोंसले बनायेंगे। वर्कशापों और इंजीनियरिंग स्टाफ के तमाम काम ठेके पर दे दिये जायेंगे। चन्द वर्षों बाद ही स्थिति यह होगी कि रेल कर्मचारी देशी-विदेशी कम्पनियों-ठेकेदारों के दिहाड़ी और ठेका मजदूर के रूप में काम करने को मजबूर होंगे।

उन्होंने सभा में मौजूद रेलकर्मियों को आगाह किया कि हमें सिर्फ वेतन विसंगति के खिलाफ नहीं वरन् सरकार की सभी घोर मजदूर विरोधी नीतियों के खिलाफ लड़ना होगा। इसके लिए उन्होंने मजदूरों पर ही धौंसपट्टी करने वाले सौदेबाज, मौकापरस्त नेताओं की जागीरदारी खत्म कर ट्रेड यूनियन के अन्दर लोकतत्र बहाल करने सभी ट्रेड और कैटेगरी के मजदूरों के साथ व्यापक एकजुटता कायम करने और ट्रेड यूनियन आन्दोलन को फिर से क्रान्तिकारी धार देने का आह्वान किया।

सभा को सम्बोधित करते हुए बिगुल मजदूर दस्ता के साथी अरविन्द ने कहा कि दुनिया भर के मजदूर वर्ग के लिए बेहद कठिन इस समय में हमें निराश होकर बैठने की जरूरत नहीं है। दुनियाभर के मेहनतकशों को लूटने वालों की दुनिया में भी अन्दर हड़बोंग मची हुई है। दुनिया के मजदूर वर्ग के महान नेताओं ने काफी पहले ही सिर्फ मुनाफे पर जीने वाले पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के जिस कभी खत्म न होने वाली अन्दरूनी गड़बड़ी की बात बतायी थी, वह आज तमाम कोशिशों के बाद और भी भयानक हो चुकी है।

साथी अरविन्द ने आगे कहा कि आज जरूरत इस बात की है कि हम मजदूर वर्ग के अमर शहीदों के भुला दिये गये सपनों और कुर्बानी की भावना को फिर से जिन्दा करें। साथ ही, हमें उन सबकों को भी नहीं भूलना होगा जो पेरिस के पहले मजदूर राज और बाद में मजदूर वर्ग द्वारा कायम समाजवादी सत्ताओं की पराजय से हमें हासिल हुए हैं। मजदूर वर्ग को अन्तिम मुक्ति केवल तभी मिल सकती है जब वह केवल मजदूरी की लड़ाई न लड़े बल्कि समूची मजदूरी-व्यवस्था यानी पूंजीवाद-साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंके और अपना राज कायम करे। उन्होंने उन पार्टियों व यूनियनों से सतर्क रहने का आह्वान किया जो मजदूरों की लड़ाई को मौजूदा व्यवस्था के अन्दर कुछ सुधार हासिल करने तक सीमित कर देना चाहते हैं।

इण्डियन रेलवे टेक्निकल एण्ड आर्टिजन इम्लाइज एसोसियेशन की रेलवे प्रेस शाखा के साथी सुदामा प्रसाद ने शिकागो के अमर शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि रेलवे के सभी मजदूरों-कर्मचारियों को एक झण्डे तले लाने की जो पहल रेल मजदूर अधिकार मोर्चा ने की है उसका वे भरपूर सहयोग देंगे।

दिशा छात्र समुदाय की ओर से सभा को सम्बोधित करते हुए विजयशंकर तिवारी ने कहा कि आज शासक वर्ग चौतरफा हमले कर रहा है। शिक्षा का बाजारीकरण कर मेहनतकशों के बेटे-बेटियों से शिक्षा का अधिकार पूरी तरह छीन लेने का कुचक्र चल रहा है। ऐसे में आज पहले से अधिक एकजुटता की भावना के साथ छात्रों और मजदूरों को साझा लड़ाई लड़नी होगी तभी मई दिवस के मजदूर शहीदों का सपना पूरा होगा।

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की कविताएं

1.

खाने की टेबुल पर जिनके
पकवानों की रेलमपेल
वे पाठ पढ़ाते हैं हमको-
'संतोष करो, संतोष करो।'

उनके धंधों की खातिर
हम पेट काटकर टैक्स भरें
और नसीहत सुनते जायें-
'त्याग करो, भई, त्याग करो।'

मोटी-मोटी तोंदों को जो
ठूंस-ठूंस कर भरे हुए,
हम भूखों को सीख सिखाते-
'सपने देखो, धीर धरो।'

बेड़ा गर्क देश का करके
हमको शिक्षा देते हैं-
'तेरे बस की बात नहीं
हम राज करें, तुम राम भजो।'

2.

कौन तोड़गा तेरी बेड़ियां
बतला ऐ गुलाम?
वो जो ग़रकाब है तारीक़ बयाबानों में
उनके ही कानों में पहुंचेगी तेरी
आहो-फुगां
हमनफ़स तुझको छुड़ा सकते हैं
जो खुद हों गुलाम....

या तो सब साथ या कोई नहीं
कोई भी नहीं
या तो हर चीज़ या फिर
कुछ भी नहीं कुछ भी नहीं

क्या ये तनहाई बदल सकती है
तेरी तस्वीर?
या तो बन्दूक तेरे वास्ते
या फिर जंज़ीर!

मई दिवस पर मजदूरों का आह्वान: अपनी क्रान्तिकारी विरासत को पहचानो! एक नयी क्रान्ति की मशाल जलाओ!!

(पेज 6 से जारी)

ाकर शर्मा ने किया। कार्यक्रम में रामाविजन लिमिटेड रुद्रपुर चीनी मिल, गदरपुर चीनी मिल, चीनी मिल किच्छा और बैंक व बीमा के मेहनतकश साथियों ने भी भागीदारी निभाई। कार्यक्रम का समापन **'बिगुल मजदूर दस्ता'** द्वारा प्रस्स्तुत क्रान्तिकारी गीत से हुआ।

मई दिवस के इस कार्यक्रम की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि सैकड़ों की संख्या में महिलाओं ने जुलूस और सभा में शिरकत करके अपनी एकजुटता प्रदर्शित की।

हल्द्वानी में जनसभा, जुलूस और नुक्कड़ नाटक

हल्द्वानी (नैनीताल)। **संयुक्त ट्रेड यूनियन समन्वय समिति** के तत्वावधान में हल्द्वानी में भी मई दिवस का कार्यक्रम आयोजित किया गया। स्थानीय नगरपालिका पर सभा को सम्बोधित करते हुए वक्ताओं ने वेतन विसंगतियों को दूर करने, रोजगार को मूल अधिकार बनाने, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सम्पत्ति जब्त करने तथा निजीकरण-छंटनी-तालाबन्दी रोकने की मांग की और इस पूंजीवादी लुटेरी व्यवस्था के खात्मे के संघर्षों को तेज करने का आह्वान किया।

सभा के पश्चात एक जुलूस निकाला गया जो नगर के विभिन्न हिस्सों से गुजरता हुआ उपजिलाधिकारी कार्यालय पर पहुंचा। जहां बीमा कर्मियों द्वारा एक नुक्कड़ नाटक प्रस्तुत किया गया। कार्यक्रम के अन्त में उपजिलाधिकारी को राष्ट्रपति के नाम सम्बोधित एक ज्ञापन सौपा गया। कार्यक्रम में मुख्य रूप से **जनवादी लोकमंच क्रान्तिकारी लोक अधिकार संगठन, ट्रेड यूनियन समन्वय समिति, ए. आई.पी.एस.एफ., परिवर्तनकामी छात्र संगठन, बिगुल मजदूर दस्ता** और स्थानीय ट्रेड यूनियनों ने भागीदारी निभाई।

इससे पूर्व दिन में 11 बजे भारतीय जीवन बीमा निगम के मण्डलीय कार्यालय पर **आल इण्डिया इंश्योरेंस इम्पलाइज एसोसिएशन** ने एक अलग कार्यक्रम के तहत 'जनता दरबार' नामक नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुति की और एक सभा का आयोजन किया।

-प्रस्तुतिः सुधाकर शर्मा

आनन्द निशिकावा श्रमिक आन्दोलन

साजिशाना कार्रवाइयों का जवाब मजदूर अपनी एकजुटता से देंगे

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर), 2 मई (बिगुल प्रतिनिधि)। दो माह से आन्दोलनरत आनन्द निशिकावा (ए.एल.पी.) के मजदूरों के धरना स्थल पर विगत 5 अप्रैल को हुए जानलेवा हमले और 7 अप्रैल को 24 मजदूरों को, धारा 307 सहित तमाम खतरनाक धाराओं में फंसाने, आनन्द निशिकावा श्रमिक संगठन के अध्यक्ष तुला सिंह सहित 9 मजदूरों की गिरफ्तारी और जिला न्यायालय द्वारा मजदूरों की जमानत खारिज किए जाने से तराई क्षेत्र के मजदूरों में व्यापक आक्रोश व्याप्त है।

आज नैनीताल और ऊधमसिंह नगर के मजदूर संगठनों और ट्रेड यूनियनों की 'संयुक्त ट्रेड यूनियन समन्वय समिति' की बैठक में उपरोक्त घटना पर रोष प्रकट करते हुए इसे मालिकों की साजिश बताया गया तथा बेगुनाह मजदूरों को तत्काल रिहा करने और जिला प्रशासन द्वारा न्यायोचित समझौते के लिए तत्काल पहल लेने की अपील की गयी। त्वरित कार्रवाई के लिए ट्रेड यूनियनों और जन संगठनों द्वारा एक ज्ञापन जिलाधिकारी को भेजा गया।

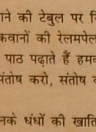

इससे पूर्व प्रबन्धकों की कुत्सित साजिशों और बेगुनाह मजदूरों की गिरफ्तारी के विरोध में विगत 9 अप्रैल को ए.एल.पी. मजदूरों के धरना स्थल पर आयोजित सभा के माध्यम से तमाम ट्रेड यूनियन कर्मियों और जनसंगठन के प्रतिनिधियों ने आन्दोलनरत मजदूरों के प्रति एकजुटता प्रदर्शित की थी। 17 अप्रैल को मालिकों और जिला प्रशासन के नापाक गठजोड़ और दमनात्मक कार्रवाई के खिलाफ श्रमिक संगठनों ने जिलाधिकारी के समक्ष प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन में **श्रीराम होण्डा** और **आनन्द निशिकावा** के मजदूरों के साथ ही **सेन्चुरी पल्प एण्ड पेपर मिल, लाल कुआ; बी.एच.ई.एल., रुद्रपुर; उत्तराखण्ड विद्युत कर्मचारी संगठन, रुद्रपुर; तराई बीज निगम, हल्दी; 'बिगुल मजदूर दस्ता'** व **क्रान्तिकारी लोक अधि**

(पेज 8 पर जारी)

क्या शंकर बीघा और नारायणपुर का सही जवाब सेनारी है? 'जो उनके लिए ठीक हैं वह कभी हमारे लिए ठीक नहीं हो सकता'

● अरविन्द सिंह

बिहार के जहानाबाद जिले के सेनारी गांव में **माओवादी कम्युनिस्ट सेण्टर (एम. सी. सी.)** के हथियारबन्द दस्ते ने जो कार्रवाई की उसके बारे में एम. सी. सी. ने यह बयान जारी किया कि 'शंकर बीघा और नारायणपुर का बदला ले लिया गया'। इस बदले की कार्यवाई से क्षेत्र के दलितों-गरीबों के दिलों में समाया हुआ रणवीर सेना का आतंक कितना कम हुआ और शोषकों के खिलाफ संघर्ष में उनके सामूहिक आत्मविश्वास को कितना बल मिला, इसका जवाब घटना के बाद पैदा हुए वहां के हालात खुद दे देंगे। लेकिन, इस पर चर्चा से ज्यादा जरूरी बात यह है कि जो कुछ हुआ क्या वह सम्पूर्ण मानवता को शोषण-उत्पीड़न से मुक्त करने वाले क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग के न्याय-सिद्धान्त, क्रान्तिकारी प्रतिकार की उसकी नीति, उसके मूल्यों और उसके क्रान्तिकारी संघर्ष की उदात्तता से कितना मेल खाता है?

लक्ष्मणपुर बाथे, शंकरबीघा, नारायणपुर में रणवीर सेना ने जो किया और सेनारी में जो एम. सी. सी. के हथियार बंद दस्ते ने किया, उसमें क्या फर्क है, सिवाय इसके कि एक प्रतिक्रियावादी शोषक वर्गों के हत्यारे गिरोह ने किया और दूसरा शोषितों-उत्पीड़ितों के लिए लड़ने वाले राजनीतिक संगठन के सशस्त्र दस्ते ने किया। जो चीज रणवीर सेना के लिए ठीक हो सकती है, क्या वही एम. सी. सी. के लिए भी ठीक है?

यही सवाल रोम के महान गुलाम विद्रोह के नेता आदिविद्रोही स्पार्टकस के मन में भी उठा था, जब उसने युद्ध के दौरान पकड़े गये दो रोमन सैनिकों को ग्लैडियेटरों (रोमन अभिजात वर्ग अपने मनोरंजन के लिए गुलामों के जोड़ों के हाथ में हथियार देकर आपस में लड़ाते थे। इन गुलामों को ग्लैडियेटर कहा जाता था। यह खूनी खेल तब बन्द होता था जब कोई एक गुलाम लड़ाई में मर जाता था) की तरह लड़ने का हुक्म दिया था। उसने यह सवाल अपने साथी डेविड से पूछा था। हम सब जानते हैं कि डेविड ने क्या कहा था। उसने कहा था- "जो उनके लिए ठीक है वह कभी हमारे लिए ठीक नहीं हो सकता।" ..."लड़ने दो अगर तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है। उन्हें एक दूसरे को मार डालने दो। मगर इससे हमीं को और चोट पहुंचेगी। यह चीज़ कीड़े की तरह हमीं को अन्दर-अन्दर खाने लगेगी। तुम और मैं, हम दोनों ग्लैडियेटर हैं। अभी उस बात को कितने दिन हुए जब हमने कहा था कि दो इन्सानों की इस लड़ाई की स्मृति को भी हम धरती से मिटा देंगे।"

यह है वह महान आदर्श, उत्पीड़न-शोषित वर्ग का न्याय दर्शन, उसकी नैतिकता- जिसे उत्पीड़ित वर्ग के पहले संगठित ऐतिहासिक विद्रोह

(पेज 8 पर जारी)

कम्युनिज्म के बारे में

".....यह पागलपन नहीं है
बल्कि पागलपन का अंत है।
यह पहेली नहीं है,
बल्कि समाधान है।
यह बड़ा सहज है,
लेकिन बहुत मुश्किल है
लागू करना।

● बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

"अभाव और कष्ट के बोझ तले दबे लाखों मेहनतकश और आम जन जिस आन्दोलन को आशा की नजर से देख रहे हैं, अगर आप यह समझते हैं कि हमलोगों को फांसी पर लटका देने से उस आन्दोलन को उखाड़ फेंकने में कामयाब होंगे तो आप हमें जरूर फांसी दे दें। ऐसा करके आप एक ऐसी चिंगारी पर पैर रखेंगे जो आपके आगे-पीछे धधकती आग बन जायेगी। यह ज्वालामुखी की आग होगी, जिसे आप बुझा नहीं सकेंगे।....... सत्य बोलने के कारण यदि आप आदमी को एक बार फिर मृत्युदण्ड देना चाहते हैं, तो बिना परवाह किये गौरव के साथ मैं यह महान मूल्य चुकाऊंगा। बुलाइये अपने जल्लादों को। सुकरात, क्राइस्ट, गियर्दानो, ब्रूनो, हस, गैलीलियो--इन सबों के रूप में आपने जिस सत्य को सलीब पर चढ़ाया था, वह आज भी जीवित है। उनकी और वैसे ही अन्य लोगों की एक विशाल सेना इस पथ पर हमलोगों की पूर्वगामी है। हम उनके अनुगमन के लिए प्रस्तुत हैं।"

"आज तुम हमारी आवाज को घोंट रहे हो, लेकिन एक दिन ऐसा एक जमाना आयेगा जब हमारी खामोशी, हमारे शब्दों से अधिक गम्भीरता के साथ बोलेगी।"

● अगस्त स्पाइस
(उन चार शहीद मजदूर नेताओं में से एक, जिन्हें हे मार्केट स्क्वायर, शिकागो की सभा में बम फेंकने के फर्जी मुकदमे में फंसाकर फांसी दे दी गई थी)

"मेरी असहाय प्रिया, तुम्हें मैं जनता को समर्पित कर रहा हूं, क्योंकि तुम उन्हीं की हो। तुमसे मेरा एक अनुरोध है- मैं जब नहीं रहूंगा, तुम जल्दबाजी में कोई काम नहीं करना, पर समाजवाद के महान आदर्शों को मैं जहां छोड़ जाने को बाध्य हो रहा हूं, तुम उसे और ऊंचा उठाना।"

● अल्बर्ट पारसन्स का फांसी से कुछ दिनों पूर्व पत्नी लूसी पारसन्स के नाम पत्र
(पारसन्स उन चार मजदूर नेताओं में प्रमुख थे, जिन्हें हे मार्केट स्क्वायर, शिकागो की सभा में बम फेंकने के फर्जी मुकदमे में फंसाकर फांसी दे दी गई थी)

"पहली मई के प्रदर्शन द्वारा आठ घण्टों के काम के दिन के साथ ही, इसका भी प्रदर्शन करना चाहिए कि मजदूर वर्ग ने सामाजिक परिवर्तन द्वारा वर्ग-भेद को मिटा देने और इस प्रकार उस मार्ग पर, उस एकमात्र मार्ग पर आगे बढ़ने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, जो सभी देशों के बीच शान्ति की ओर, अन्तरराष्ट्रीय शान्ति की ओर जाता है।"

● फ्रेडरिक एंगेल्स
(अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग के शिक्षक, नेता और कार्ल मार्क्स के आजीवन मित्र, अनन्य सहयोगी)

साजिशाना कार्रवाइयों का जवाब.....

(पेज 7 से जारी)

कार संगठन के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया।

15 अप्रैल को नारी सभा के नेतृत्व में आनन्द निशिकावा के श्रमिको के परिवार की महिलाओं समेत स्थानीय महिलाओं ने जिलाधिकारी का घेराव करके दो घण्टे का प्रतीकात्मक धरना दिया। निर्दोष मजदूरों की तत्काल रिहाई, दोषियों के विरुद्ध तत्काल कार्रवाई करने तथा मजदूरों की समस्या का यथाशीघ्र समाधान करने सम्बन्धी मांगों से युक्त एक ज्ञापन जिलाधिकारी को महिलाओं ने सौंपा।

बहरहाल, प्रबंधकों की हठधर्मिता और साजिशाना कार्रवाइयां अभी भी जारी हैं। पर आनन्द निशिकावा के मजदूरों का मनोबल टूटा नहीं है। वे अपनी मांगों को लेकर फिलहाल क्रमिक अनशन पर बैठे हुए हैं। प्रबंधकों के पक्ष से प्रशासन भी उन्हें लगातार डराने-धमकाने की कार्रवाई जारी रखे हुए है।

क्या शकर बीघा और नारायणपुर का सही जवाब सेनारी है?
'जो उनके लिए ठीक है वह कभी हमारे लिए ठीक नहीं हो सकता'

(पेज 7 से जारी)

के सिद्धान्तकार डेविड ने इस ढंग से व्यक्त किया था। स्पार्टकस और डेविड की उस महान लड़ाई को आज दुनियाभर में, इतिहास का सबसे अधिक प्रगतिशील और क्रान्तिकारी-आधुनिक सर्वहारा वर्ग-आगे बढ़ा रहा है।

यह बात समझ में आती है कि सदियों से दबाये-कुचले जा रहे लोग किन्हीं परिस्थितियों में, बेबसी और अपमान की किसी घनीभूत पीड़ा के आवेश में स्वत:स्फूर्त ढंग से उत्पीड़कों के खिलाफ प्रतिशोध लेने के लिए उस तरह की सामूहिक हिंसा पर उतर आयें, जैसा सेनारी में हुआ। लेकिन क्या किसी क्रान्तिकारी संघर्ष की यह आम रणनीति या रणकौशल हो सकता है, जैसा कार्रवाई के बाद एम. सी. सी. द्वारा जारी बयान से जाहिर होता है।

इतिहास का यह अटल सत्य है कि सर्वहारा और सभी उत्पीड़ित वर्ग उत्पीड़क-शोषक वर्गों से अपनी मुक्ति क्रान्तिकारी सशस्त्र संघर्षों द्वारा ही हासिल कर सकते हैं। इस सच्चाई को नकारना इतिहास के सबकों को ही नकारना होगा। यह भी सही है कि कभी-कभी जनता के क्रान्तिकारी संघर्षों के दौरान ऐसी परिस्थितियां पैदा हो जाती हैं, जब प्रतिक्रियावादी वर्गों के खूनी आतंक के खिलाफ संघर्षरत जनता के आत्मविश्वास को बल देने के लिए क्रान्तिकारियों को भी कुछ जरूरी 'कार्रवाइयां' करनी पड़ती हैं। लेकिन, ऐसा करके क्रान्तिकारी उस न टाले जा सकने वाली ऐतिहासिक त्रासदी को अंजाम देते हैं। यह निर्ममता उस संवेदनशीलता और दुनिया को सदा-सर्वदा के लिए बर्बरताओं से मुक्त करने के उस महान लक्ष्य से ही पैदा हो सकती है, न्याय की, सच्चाई की उस उदात्त भावना से ही पैदा हो सकती है, जिसे अपने दिलों में संजोकर कोई क्रान्तिकारी योद्धा रणक्षेत्र में दुश्मन को मार गिराते समय विचलित नहीं होता। लेकिन, यह चीज उस सामूहिक सफाये की नीति से पूरी तरह भिन्न है जिसमें बच्चों, बूढ़ों और महिलाओं को भी नहीं बख्सा जाता।

क्रान्तिकारी संघर्षों के दौरान दुश्मनों को मार गिराना न तो ठण्डी हत्याओं के समान होता है और न ही किसी सामूहिक उन्माद के वशीभूत ऐसा किया जाता है। यदि उत्पीड़ित वर्ग के लोग स्वत:स्फूर्त ढंग से ऐसा करते भी हैं तो क्रान्तिकारी राजनीतिक संगठन का काम यह होता है कि उनकी प्रतिशोध-भावना को क्रान्तिकारी ऊर्जा में तब्दील करे और उसे उस महान लक्ष्य से जोड़े जिसे पूरा करने का जिम्मा इतिहास ने आज के उत्पीड़ित वर्ग को सौंपा है- यानी शोषण-उत्पीड़न-बर्बरताओं से मुक्त एक सुन्दर दुनिया बनाने का जिम्मा, जिसका रास्ता बेहद लम्बा, कठिन, ऊबड़-खाबड़ और घुमावदार है। उसे इस रास्ते की समझदारी से लैस करना और उसके अन्दर क्रान्तिकारी धैर्य की उस भावना को पैदा करना, जो इस लम्बे रास्ते पर चलने की शर्त है, नेतृत्व की जिम्मेदारी होती है न कि जनता की भावनाओं के बहाव में खुद बह जाना।

हम समझते हैं कि सेनारी की घटना पर आज इस ढंग से विचार करके ही हम निरर्थक और क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए बेहद नुकसानदेह घटनाओं के सिलसिले को रोक सकते हैं। इसके साथ ही, एक बार फिर यह सवाल हमारे सामने मुंह बाये खड़ा है कि देश के क्रान्तिकारी आन्दोलन की दिशा क्या होनी चाहिए? इस सवाल पर आज बिना कोई विलम्ब किये सोचना हमारे अस्तित्व की शर्त बनता जा रहा है कि कहीं बिहार के गांवों में प्रतिक्रियावादी वर्गों के दमन के खिलाफ हमारी रणनीति की बुनियाद ही गलत जगह पर तो नहीं खड़ी है? जिनसे लड़ना है और जिनको लेकर लड़ना है, कहीं उनकी पहचान ही गलत तो नहीं? इस गलत पहचान से बनी गलत रणनीति के कारण कहीं हमारे दोस्त ही हमारे दुश्मनों के पक्ष में नहीं जा खड़े हो रहे हैं? बिना किसी पूर्वाग्रह के हमें इस पर सोचना होगा। इन सवालों पर गम्भीरतापूर्वक सोचे बिना हम उस दुर्भाग्यपूर्ण मुकाम से आगे नहीं बढ़ सकते, जहां आज देश का क्रान्तिकारी आन्दोलन खड़ा है।

सेनारी की घटना के बाद वहां रणवीर सेना, शासक वर्गों के राजनीतिक दलों और राज्यसत्ता का गंठजोड़ पहले से भी मजबूत होता जा रहा है, जो क्रान्तिकारी संगठनों के कार्यकर्ताओं-हमदर्दों की व्यापक धरपकड़, उत्पीड़न 'कॉम्बिंग आपरेशन', सशस्त्र बलों की तैनाती को और अधिक चाक-चौबन्द करना आदि कार्रवाइयों से जाहिर है। साथ ही, हमारे मित्र वर्गों के बीच हमारी दूरियां भी पहले से ज्यादा बढ़ती जा रही है।

क्या एम. सी. सी. के साथी और सेनारी को जायज ठहराने वाले मित्र इन सब बातों की रौशनी में एक गम्भीर आत्मनिरीक्षण-परीक्षण से गुजरकर क्रान्तिकारी आन्दोलन को मजबूत बनाने की दिशा में आगे बढ़ेंगे? यह उन सबका सवाल है जो देश में जनता की वास्तविक मुक्ति के प्रयासों से जीवन्त रूप से जुड़े हैं या इन प्रयासों के सहयोगी, हमदर्द या शुभचिन्तक हैं?

भारतीय इतिहास का दुर्लभ दस्तावेज

शहीदे-आज़म की जेल नोटबुक

भगतसिंह द्वारा जेल में अध्ययन के दौरान लिये गये नोट्स

हिन्दी में पहली बार प्रकाशित

मूल्य: 50 रुपये (पेपरबैक), 100 रुपये (सजिल्द)

परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ

प्राप्ति स्थान: जनचेतना,3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-226 010

स्वत्वाधिकारी डा. दूधानाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वानी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक : डा. दूधानाथ। सम्पादकीय पता : द्वारा ओ0पी0 सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226 006. सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।